वर्ष ६, अंक ८ श्रीकृष्णाय नमः वैशाख पूर्णिमा १९८९

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

दास-भक्त हनुमानजी

यहि विधि सकल कथा समुझाई, लिये दोउ जन पीठ चढ़ाई। (तुलसीदासजी)

Gita Press, Gorakhpur

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ६ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, वैसाख पूर्णिमा सं० १९८९ | अंक ८ पूर्ण संख्या ६८

वेदोपदेश

उतैसां पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः स उ गर्भे अन्तः॥ १॥

इनका निश्चय से पिता अथवा इन का पुत्र इन में श्रेष्ठ अथवा कनिष्ठ ऐसा एक ही देव मन में घुसा हुआ है जो पहले उत्पन्न हुआ था वही अब गर्भ के अन्दर है॥ १॥

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्ण पूर्णेन सिच्यते।
उतो तदद्य विद्याम यतस्तत्परिषिच्यते॥ २॥

पूर्ण से पूर्ण का उदय होता है। पूर्णसे पूर्ण सींचा जाता है निश्चय से वह आज हम जानेंगे कि जहां से वह चारों ओर से सींचा जाता है॥ २॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥ ३॥

ईश्वर पास रहने वाले उपासक को नहीं छोड़ता, जीव पास रहने वाले ईश्वर को भी नहीं देखता। देव का काव्य देखो। वह देव मरता नहीं और न बुड्ढा होता है ॥ ३ ॥

यत्र देवाश्च मनुष्याश्चारा नाभाविव श्रिताः।
अपां त्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितम् ॥ ४ ॥

जिस प्रकार चक्र के आरे नाभि में लगे रहते हैं, उसी प्रकार जहां देव और मनुष्य आश्रित हैं, वह प्रकृति या कर्मों का फूल जहां कुशलता से स्थापित है, वह स्थान तुम से पूछता हूं ॥ ४ ॥

येभिर्वात इषितः प्रवाति ये ददन्ते पञ्च दिशः सधीचीः।
य आहुतिमत्यमन्यन्त देव अपां नेतारः कतमे त आसन् ॥ ५ ॥

जिन से प्रेरा हुआ वायु चलता है। जो मिले हुये पांच दिशायें, दिशाओं में रहे हुये सब पदार्थ देते हैं जो देव हवन को अत्यन्त मानते हैं वे कौन प्रकृति के या कर्मों के नेता हैं ॥ ५ ॥

भगवद्भक्ति

(ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी)

कथा नारायणदास जी की।

नारायणदास जी जाति के चारण थे। उनका बड़ा भाई कमाने वाला था और यह लुटाने वाले थे। एक बार इनकी भाभी ने ठंडा भोजन खाने को दिया, इन्होंने न खाया और गरम भोजन मांगा। भाभी ने उपालम्भ दिया कि क्या तू अपने बाबा अल्ह जी के समान भगवद्भक्त है, कि तेरी आशा उठाया करें। नारायणदास जी के मन में यह बात चुभ गयी, वे विचार करने लगे कि भगवद्भक्ति से विमुख होकर जीना पशु के सदृश है, मनुष्य शरीर केवल भगवद्भक्ति के निमित्त है, संसारी सुख के लिये नहीं है, भगवद्भक्ति सार है और संसार असार है, ऐसा विचार कर वे संसार का त्याग करके द्वारिका में जाकर ऐसे भगवद्भजन में लगे कि भगवत् उनकी भक्ति के वश हो गये और जो कृपा अल्हजी पर की थी, वैसी ही इन पर करके साक्षात् प्रकट होकर दर्शन दिये। सच कहा है—

दोहा—भजन ईश का सार है, है संसार असार।
ईश चरण की ले शरण, भोला ! हो भव पार ॥

कथा जीवगोसाईं जी की।

हे मंसाराम! इस कलियुग में रूप सनातन जी तो भक्ति के जल के सदृश हो गये हैं और जीव गोसाईं महाराज मानसरोवर के सदृश हुए हैं और भगवद्भजन उस मानसरोवर के दृढ़ घाट के सदृश है और भक्ति की दृढ़ता फूले हुए कमल के सदृश है। कलियुग के प्रपंच की काई जिस सरोवर के समीप नहीं गयी और जिससे हंस रूप भगवत्तों को परमानन्द प्राप्त हुआ। जीवगोसाईं जी ने वृन्दावन में वास करके प्रिया प्रियतम महाराज की सेवा और उनके भजन में मन लगाया और जगत् के उद्धार के निमित्त सब शास्त्र पुराणादि एकत्र करके उनका जो सार और मुख्य अभिप्राय था, उसको भली प्रकार समझ कर भगवद्भक्ति का ऐसा प्रचार किया कि करोड़ों संसार समुद्र से पार हो गये। जैसे सूर्य अन्धकार का शत्रु है और जैसे मेघ सब का उपकार करता है, उसी प्रकार जीवगोसांई संदेह के नाश करने वाले और परोपकारी मित्र थे।

यह माधुर्यभाव से भगवत् की उपासना किया करते थे, रास चरित्र और दूसरी विहार लीलाओं को परम तत्व जानते थे और उन्हीं को मुख्य तात्पर्य समझते थे। जीवगोसाईं रूप सनातन जी के भतीजे थे। इनके पास धन ऐश्वर्य बहुत था। सब को असार समझ कर इन्होंने त्याग दिया। जब यह श्रीवृन्दावन में आये, तब इनके शरीर पर एक धोती और एक बड़े मोल की रेशमी चादर थी। रूप सनातन जी ने मिलते समय कहा कि नाम तो वैराग्यवान् और पोशाक इतनी तड़कभड़क की। जीवगोसाईं जी उसी समय उनको भी त्याग कर गांव से अलग यमुना किनारे पर कुटी बना कर भगवद्भजन और माधुरी ध्यान में लग गये।

एक दिन गोसाईं रूप जी इसी ग्राम के पास चले गये। ब्रजवासियों ने कहा कि हमारे गोसाईं जी का दर्शन कीजिये। रूप जी आये और जीव-गोसाईं जी की मग्न दशा देख कर बहुत प्रसन्न हुए और उनको छाती से लगा कर प्रेम में पूर्ण हो गये। पश्चात् रूप जी ने जीव गोसाईं जी को अपने पास टिका कर सब शास्त्र पढ़ाये और रसग्रन्थ और गोप्य भगवच्चरित्रों की जो वचन परम्परा से सिखाये जाते हैं, भली प्रकार शिक्षा दी। जीव-गोसाईं जी की विद्या और पंडिताई की ख्याति होगयी।

एक बार अकबर बादशाह ने उनको गंगा यमुना की महिमा का निर्णय करने के लिये बुलाया इनका प्रण था कि वृन्दावन और ब्रजभूमि को छोड़ कर रात्रि को कहीं निवास नहीं करते थे, इसलिये बादशाह ने कई जगह घोड़ों के रथ की सवारी में बैठा कर एक पहर के भीतर वृन्दावन लौटाने का प्रबन्ध कर दिया। यह आगरे में आये और ऐसे सुष्टुवाद से इन्होंने यमुनाजी की बड़ाई को सिद्ध कर दिया कि किसी को कुछ अनुवाद की जगह न रही अर्थात् इन्होंने कहा कि अरे विचार के लिये वृथा हमको बुलाया, कोई एक पुराण देख लिया होता। गंगा जी को जिस पूर्ण ब्रह्म का चरणामृत लिखा है, यमुनाजी उसी पूर्ण ब्रह्म की पटरानी हैं, विचार कर लेना चाहिये कि किस की बड़ाई हुई। इस उत्तर से किसी को किसी बात का कुछ संदेह न हुआ। यह उपासना और सिद्धान्त की परम पक्कता है। जिसमें जिस किसी का जैसा विश्वास है, वह देवता उसको वैसा ही फल देता है। गोसाईं जी का यह निर्णय सुन कर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और विनय करने लगा कि कुछ सेवा की आज्ञा हो। गोसाईं जी ने कहा कि सेवा

का कुछ प्रयोजन नहीं है। जब बादशाह ने बहुत आग्रह किया तो आज्ञा की सब पुराण, स्मृति और शास्त्र काशीजी आदि से मंगवा कर वृन्दावन में इकट्ठे करा दो। बादशाह ने थोड़े ही दिनों में गोसाईं जी की आज्ञा पूरी कर दी। अब तक सब पुराण, स्मृति और शास्त्र वृन्दावन में प्राप्त हैं।

गोसाँई जी ने जिस प्रकार गोविन्द जी का मन्दिर अजमेर के अधिपति मानसिंह से बनवाया, उसका वृत्तान्त रूप सनातन जी की कथा में है. एक बार अकबर बादशाह वृन्दावन में आया और गोसाईं जी का दर्शन करने को गया और चलते समय विनय करने लगा कि कुछ मकान आदि बनवा देने के लिये आज्ञा दीजिये। गोसाईं जी ने कहा कि कुछ प्रयोजन नहीं है, जब बादशाह हठ करने लगा, तो गोसाईं जी ने कहा कि हृदय की आंखों से श्रीवृन्दावन और यहां की सजावट को देखना चाहिये और पीछे अपनी श्रद्धा के अनुकूल हठ करनी चाहिये। बादशाह ने आंख बन्द करके देखा तो वृन्दावन की धरती मन्दिर और कुंजें आदि सब सोने से खचित और मणियों के जड़ाव से जड़ित हैं। उसको देख कर अकबर की आंखें चौंध गयीं। और भी बहुत प्रकार का सामान देखने में आया, जो कानों से सुनने और मन से ध्यान करने में नहीं आया था। अकबर लज्जित होकर वहाँ से विदा हुआ।

गोसाईं जी का यह नियम था कि जो कोई भेंट पूजा लाता था, उसको वे यमुना जी में डाल देते थे, अपने पास कुछ नहीं रखते थे। एक दिन सेवकों ने हाथ जोड़ कर विनय किया कि यमुना जी में क्यों डाल देते हैं, यदि साधु सेवा हो तो कैसा अच्छा हो। गोसाईं जी ने कहा कि साधु सेवा करने के योग्य कोई देखने में नहीं आता। एक चेला कहने लगा कि जैसी आपकी आज्ञा हो, वैसी सेवा यह दास किया करे, गोसाईं जी ने आज्ञा दे दी और चेले ने सेवा करना आरम्भ कर दिया। एक साधु ने रात्रि को कुसमय में भोजन मांगा। वह सेवा करने वाला टहल और सेवा के परिश्रम से थक गया था, रोष से बोला कि इस समय भोजन कहां है, प्रभात को मिलेगा, यदि बहुत भूखा है तो मुझे खाले, गोसांई जी सुन कर बोले कि इसी श्रद्धा पर साधुओं की सेवा अंगीकार की थी उनको आदमी खाने वाला कहता है। इतना कह कर गोसांई जी ने हरिभक्तों का महात्म्य, उनकी बड़ाई और उनकी सेवा का फल सब को समझाया।

जीव गोसांई जी रूप गोसाँई जी की आज्ञा से श्रीगोविन्द देव जी की सेवा और पूजा में रहते थे। बहुत काल तक प्रेम पूर्वक सेवा करते रहे, पश्चात् एक विश्वासी चेले को सेवा सौंप कर आप श्रीवृन्दावन की लता, कुंज, यमुनातट और वन इत्यादि भगवत् रूप के मनन और ध्यान में बेसुधि और निमग्न रहने लगे।

कं–जीव गोसाईं सा हुआ, भक्त न कोई अन्य।
स्वामी श्रीगोविन्द के, सच्चे भक्त अनन्य॥
सच्चे भक्त अनन्य, ध्यान भगवत् का कीन्हा।
ब्रज की भूमि विहाय, पैर बाहर नहिं दीन्हा॥
भोला! भज ब्रजचन्द्र, वही सच्चा है साईं।
कृष्णचन्द्र गोविन्द, भजा जो जीव गोसाईं॥

योग साधन

(४)

(ले० स्वामी शिवानन्द जी)

१. ऐ मेरे परमात्मा ! अनन्त व्यर्थ के विचार, लाभ से शून्य जंगली खयालात और करोड़ों संकल्पों को दिल व दिमाग् में स्थान देने से मेरा हृदय विदीर्ण सा होयगा है। बहुत होचुकी, बहुत होचुकी। मुझे ठीक राह पर चलाओ। त्राहिमाँ, त्राहि मां। मेरी विचार धारा और विक्षिप्त चित्त को अपने चरण कमलों की तरफ फेरो और इस चित्त को सदैव की शान्ति प्रदान करो। मुझको अचल और अटल अनन्य भक्ति प्रदान करो, मैं केवल इतना ही चाहता हूं और तू मेरे हृदय की पहले ही जानता है।

२. वकील निस्सन्देह कचहरी का गिद्ध है, ज़मीदार मुफ्तखोरा है, और साहूकार जोंक है। ऐ परमात्मन् ! इन ग़रीब भूले हुओं पर दया कर। इनको वैराग और ज्ञान दे। वह यह नहीं जानते कि हम क्या कर रहे हैं ? वह बुद्धि और धन से मोह को प्राप्त हो रहे हैं। प्यारे पाठकगण ! कभी वकील मत बनो प्रोफेसर बनो या डाक्टर बनो।

३. यदि संसारी आदमी सन्तों के सत्संग में आवें तो उनके प्रभाव से उनकी बुरी वासनाओं में परिवर्तन हो सकता है। सन्तों के सत्संग से उनकी आत्मा का उत्थान हो सकता है और उनको यह विश्वास हो सकता है कि हम भी ऊपर को उठ सकते हैं।

४. साधन अवस्था में अपनी शुद्ध की बुद्धि से काम लो यह बहुत आवश्यक है अन्यथा ग़लती में पड़ जाओगे और कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।

५. दूसरों के तरीके, भम्मति, विश्वास, और विचारों का आदर करो किसी से झगड़ा मत करो। साधक के लिये उदारता परमावश्यक है। यदि तुम्हारा चित्त उदार नहीं है तो तुमको चित्त की शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

६. इस द्वन्द्व जगत् में न तो कुछ वास्तविक सत्य है और न ही ग़लत है। प्रत्येक आदमी के कथन में उसके अपने अनुभव के अनुसार कुछ न कुछ सत्य अवश्य है। इस बात को सदैव याद रक्खो।

७. एक प्यासा आदमी तो केवल पानी ही पीता है और भूखा आदमी केवल भोजन करता है। इसी प्रकार जो आत्मिक ज्ञान का भूखा और आत्मिक ज्ञान का प्यासा है वह ही अमृत के प्याले को पीएगा।

८. परमात्मा की तलाश भी इच्छा और इच्छा की पूर्त्ति का प्रश्न है। यदि तुमको भगवान की चाह है तो वह मिलेगा।

९. काम वासना में अनेक दोष हैं और इसके परिणाम स्वरूप अनेक पाप हैं जैसे कमज़ोरी, आसक्ति, दासभाव, आत्मिक बल की कमी, ख़राब स्वभाव, चित्त की अशान्ति। इसलिए सब प्रकार की काम वासनाओं से अलग रहना चाहिए।

१०. एक प्रकार का प्रयोग है जिसको हिपनोटिज्म कहते हैं। यह साधारण पुरुषों की इच्छा शक्ति को वश में करने से किया जाता है। गाने बजाने से भी मनुष्य का चित्त वश में होजाता है। ऐसे प्रकारों से बचना चाहिए।

११. कुछ मक्कार भक्त होते हैं, जो मक्कारी से आंसु बहा देते हैं। ऐसे आदमियों की पहचान में सावधान रहना चाहिए। सच्चे भक्त के आंसु, भक्त और भक्त के प्रेम के आंसु अलग ही होते हैं। उनकी भक्ति की अजस्र धारा से तुम्हारे दिल पर जादू का सा असर हो जावेगा। मक्कार आदमी का आंसु बहाने का स्वभाव हो जाता है। उनको एक प्रकार का रोग हो जाता है। मनुष्य के शिर में एक नाड़ी होती है जिसकी रगड़ से आंसु बहने लगते हैं। इसलिए ऐसे बनावटी भक्तों को विवेक और बुद्धि से पहचान लेना चाहिए।

१२. तुमको कुछ महीने या कुछ वर्ष किसी ज्ञानी, भक्त अथवा योगी के साथ रहना चाहिए। तुमको जितना अवसर मिलसके उतना ही उनके साथ उठने बैठने और सोने का प्रयत्न करना चाहिये। वहां रह कर उनके स्वभाव, उनके ढंग और जीवन का अध्ययन करना चाहिए। ऐसे सत्संग का अवसर मिलने पर ही तुम उनको कुछ जान सकोगे। केवल दर्शन या दस पांच मिनट की बात चीत से ठीक पता लगना कठिन है तुम उनका ठीक अन्दाज़ा नहीं लगा सकते। इतना ही नहीं तुम्हारा जीवन भी पवित्र होना चाहिए और तुमको सार असार का विचार करना चाहिए और परमात्मा में चित्त लगाना चाहिए। एक लालची, कामी, संसारी पुरुष अध्यात्मिक पुरुष के जीवन को क्या समझ सकता है चाहे वह बारह वर्ष तक उनके पास रहता रहे। साधु की पहचान बड़ी कठिन है। आध्यात्मिक आचार्य का प्राप्त करना बड़ा कठिन है।

१३. अधिक मित्र न बनाओ। वास्तव में संसार में सच्चे मित्र हैं ही नहीं लोग स्वार्थ के लिए साथी बन जाते हैं। तुम्हारा सच्चा मित्र तुम्हारे हृदय में बैठा हुआ आत्मा है। हर समय परमात्मा ही तुम्हारा सच्चा मित्र है। यदि तुम उसको भूल भी जाओ तो भी वह सदैव तुम्हारा हित चाहता रहता है।

१४. अपने खान, पान पर तुमको अधिकार होना चाहिए। किसी विशेष पदार्थ से राग व तृष्णा नहीं होनी चाहिए। चाय, कहवा, दूध और फलों के लेने में कोई हानि नहीं है, परन्तु तुमको किसी पदार्थ का दास नहीं होना चाहिए। जब मनुष्य यह कहता है कि मुझे मसाले, चटनी और खटाई के बिना नहीं रहा जाता तो बन्धन हो जाता है। तुमको अनुभव करना चाहिए और चित्त की परीक्षा करनी चाहिए और मन में जो इच्छाएं उठती रहती हैं उनका निरीक्षण करके उनको समूल नष्ट करना चाहिए। साधन में ठीक आहार का लेना अत्यन्त आवश्यक है। जिसने जिह्वा को वश में कर लिया उसने सब इन्द्रियों पर काबू पालिया।

१५. जिज्ञासुओ! तीन बातों को नित्य याद रक्खो (१) उन सन्त महात्माओं का स्मरण करो जिन्होंने ज्ञान को प्राप्त कर लिया है जैसे दत्तात्रय, शंकराचार्य, ज्ञानदेव, रामदास और तुलसीदास आदि। इससे तुम को अपने साधन में बहुत उत्साह मिलेगा। (२) मृत्यु, बीमारी, बुढ़ापा और संसार के कष्टों को याद रक्खो। (३) इस तत्व को समझो कि जिस भान्ति रज्जु में सर्प की भ्रान्ति है, आकाश में नीलता की और बालू में मृग तृष्णा की इसी प्रकार यह संसार है। अन्तिम दो बातों के याद रखने से वैराग उत्पन्न होगा।

१६. किसी के साथ अधिक मेल मिलाप न करो विशेष कर स्त्री से। अधिक मेल मिलाप का फल घृणा है। मनो विज्ञान शास्त्र का अच्छा परिचय होना चाहिए। इस ज्ञान के आधार पर तुम भिन्न २

प्रकृति के मनुष्यों से कुशलता पूर्वक व्यवहार कर सकते हो। अधिक मित्रता झगड़े और शत्रुता में समाप्त होती है।

१७. माया मनुष्यों को स्नेह, प्रेम, दया मान और धन में बांध लेती है। यह माया की तीक्ष्ण धारा है। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि मैं किसी से प्रेम करूं साथ ही मनुष्य यह भी चाहता है कि दूसरे भी मुझ से प्रेम करें। मनुष्य सम्मान भी चाहता है और हकूमत भी यह सब मनुष्यों के स्वभाव हैं। मनुष्यों का प्रेम वृक्ष की छाया की भान्ति अस्थाई है। मनुष्य का प्रेम बनावटी और स्वार्थ परता को लिए हुए होता है।

१८. जिस तरह संसार के अन्य समस्त पदार्थ असत्य हैं उसी तरह प्रेम और मान को गोबर और विष के तुल्य समझना चाहिए। उदासीन रहो, गम्भीर बनो और मौन रक्खो। मिलना जुलना छोड़ दो, एकान्त सेवन करो और अपने हृदय में छुपे हुए आत्मा के आनन्द में मस्त रहो। जब तुम्हारा वास आत्मा में हो जावेगा तो तुमको किसी साथी की आवश्यकता न रहेगी।

१९. तुम्हारे आखें हैं परन्तु तुमको दिखाई नहीं देता। चित्त को अन्तर में लगाओ और अनुभव करो। इस तुच्छ 'मैं' का विश्लेषण करो। आंखों और कानों को बन्द करो। इस तुच्छ 'मैं' के कारण रूप को खोजो तब तुमको पता लगेगा। साधन करो, साधन करो। ओ३म् ओ३म् ओ३म् भय मत करो। तत् त्वं असि। मेरे प्यारो! राम और शिव तुमको ज्ञान देंगे और तुम्हारी आत्मा का उत्थान करेंगे। आत्मा की आवाज़ को सुनो, सच्चे बनो और ऊपर को उठो निराश न हो।

२०. स्वरूप तुम्हारा असली घर या निवास स्थान है। ब्रह्म तुम्हारा स्वभाव है, ओ३म् तुम्हारा असली नाम है, विचार तुम्हारा शास्त्र है। वैराग तुम्हारी दश इन्द्रियों और मन के मारने की मशीन गन है। निदिध्यासन तुम्हारा हवाई जहाज़ का अड्डा है जहां से ब्रह्माकार वृत्तियों का उद्भव होता है। अब ब्रह्म की तरफ उड़ना चाहिए।

२१. ज्ञानी या योगी अपने शिष्यों को विश्वास दिलाने के लिए सिद्धियों का प्रदर्शन करते हैं। चुड़ालाई शिखरध्वज के पास गया और पृथ्वी से कई फीट उचा खड़ा होगया। शिखरध्वज को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह उसका शिष्य बन गया।

२२. ऐ मेरे परमात्मा कृष्ण स्वामी, मेरे अन्तर्यामी, अविनाशी सर्व भूतादि वास! संसार की ज्योति, मेरे जीवन के जीवन और मेरी और मेरी आत्मा के आत्मा के आत्मा!! मुझे आध्यात्मिक शक्ति दो कि मैं अपनी इन्द्रियों और मन पर काबू पा सकूं। मुझको पवित्र बना, मुझे ज्ञान और विद्या प्रदान कर, मुझे ब्रह्मचारी व सदाचारी बना। मुझ पर ऐसी दया कर कि मेरा चित्त तेरे चरण कमलों में लगा रहे।

२३. योग साधन के नियमों में और धार्मिक आचार के पालन करने में किसी प्रकार का प्रमाद बिलकुल नहीं करना चाहिए तुम्हारा स्वभाव बहुत गम्भीर होना चाहिए और भगवान् सम्बन्धी बातों की हंसी नहीं उड़ानी चाहिए, अन्यथा उन्नति में बहुत बाधा पड़ेगी और तुम अपने बुरे स्वभाव में परिवर्तन नहीं कर सकोगे।

२४. तुम मन और माया के चक्र में पड़े हो। ध्यान पूर्वक प्रयत्न करने से तुम्हारा इस चक्र से पीछा छूट सकता है। इस चक्र में पड़े हुए तुम अपने को शरीर समझते हो और अपने को स्त्री, पुत्र और घर से बांध रक्खा है। लगातार यह

ध्यान करो कि मैं आत्मा हूं। संसार को और शरीर को अनित्य समझो।

२५. दस बजे सोजाओ और ४ बजे उठ जाओ। प्रातः काल उठने से मनुष्य का स्वास्थ्य, सम्पत्ति और बुद्धि सब बढ़ते हैं। स्वास्थ्य के लिए ६ घण्टा सोना बहुत काफी है। जिज्ञासुओं को चाहिए कि निद्रा को कम करें। चार या पाँच घण्टे की नींद काफी है। नींद कम हो परन्तु गाढ निद्रा होनी चाहिए। गाढ निद्रा चार घण्टे की काफी है। परन्तु नींद को धीरे २ कम करना चाहिए।

२६. जब तुम शीर्षासन, व सर्वाङ्गासन अथवा कोई और आसन करो तो स्वांस को कुछ देर रोक लो फिर धीरे २ बाहर को निकालो। स्वाँस को एक दम बाहर न निकालो। प्राणायाम और आसन दोनों का अभ्यास साथ २ होना चाहिए। जब तुम आसन या कसरत करो तो मुँह से स्वांस न लो।

२७. स्वांस को भीतर खेंचने का नाम पूरक है, रोकने का नाम कुम्भक और बाहर निकालने का नाम रेचक है। पूरक, कुम्भक और रेचक में १, ४, २ की मात्रा होनी चाहिए, जब स्वांस को भीतर खेंचो तो एकवार ओ३म् का उच्चारण करो, स्वांस को ठैराते समय चार वार ओ३म् उच्चारण करो और बाहर निकालते समय दो वार उच्चारण करो स्वाँस बहुत धीरे २ बाहर निकालना चाहिए। आरम्भ में एक सप्ताह इसी प्रकार अभ्यास करना चाहिए।

२८. दूसरे सप्ताह में मात्रा को बढ़ा कर २, ८, ४ करलो तीसरे सप्ताह में ३, १२, ६ इसी प्रकार बढ़ाते २ मात्रा १६, ६४ और ३२ तक करलो।

२९. बद्ध, सिद्ध, स्वस्तिक अथवा सुखासन से बैठो। आंखें बन्द करलो। आंखें बन्द करने से चित्त बाह्य वस्तुओं की तरफ कम जावेगा। अब अपने दाएं हाथ से दांया नाक का सुर बन्द करलो और बाएं सुर से वायु का आकर्षण करो, वायु को ऐसे धीरे २ खेंचो कि शब्द न होने पावे। फिर बाएं सुर को अंगूठे और छोटी उंगली से बन्द करलो और दाएं सुर को बराबर बन्द रहने दो। स्वाँस को भीतर रोकलो और ओ३म् का ध्यान करो।

३०. अब दाएं सुर को खोलो और बाएं को बन्द रक्खो; स्वाँस को बहुत धीरे २ बाहर निकालो। शीघ्रता से बाहर न निकालो क्योंकि इससे अन्तर की नाड़ियों पर दबाव पड़ेगा। अब प्राणायाम की आधी विधी समाप्त हो चुकी।

३१. उपरोक्त विधि को उलटा करने से प्राणायाम की पूर्ण विधि होवेगी। अब दाएं सुर से वायु का आकर्षण करो और दाएं अंगूठे से बन्द करके प्राण को रोकलो। इसके पश्चात् बाएं सुर को खोल दो और दाएं को अभी बन्द रक्खो। धीरे २ स्वांस को बाहर निकालो। इस तरह सम्पूर्ण विधि समाप्त होगई।

३२. जब एक प्राणायाम समाप्त होजावे तो दो तीन गहरे सांस लो जिससे आराम मिलेगा फिर दूसरा प्राणायाम आरम्भ कर दो।

३३. शौच क्रिया से निवृत्त होकर खाली पेट सवेरे ५ बजे दस, बीस या तीस प्राणायाम सुलभता से कर सकते हो और इतने ही प्राणायाम सन्ध्या के समय कर सकते हो, यदि तुमको सवेरे शौच जाने का अभ्यास नहीं है तो कोई बात नहीं तुम नियम पूर्वक प्रातःकाल ५ बजे प्राणायाम कर सकते हो।

३४. पूरक, कम्भक और रेचक तीनों प्राणायाम करते समय ओ३म् का अर्थ सहित जप करना

चाहिए। वह परमात्मा अजर, अमर, शुद्ध, निरंजन और ज्योति स्वरूप है। इससे तुम्हारा आत्मिक बल बढ़ेगा। यह सगर्भ प्राणायाम कहलाता है अर्थात् अर्थ सहित।

चेतो

(ले० श्री गंगाविष्णु पाण्डेय विद्याभूषण, 'विष्णु')

(१)

कसते भ्रम बन्धन में तिनको नित पापिन के कुल में बसने।
बसते बहु पातक हैं उनको अरु रोग समूह सदा प्रसते॥
हँसते सब हैं जगमें तिनको दिन रात विपतिन में फँसते।
धँसते कलि कीच में वे नर हैं भगवान हिं जो न भजें रसते॥

(२)

जो जगनाथ अनाथन के तिनकी किरपा सब काज सरैंगे।
छप्पन भोग मिलैं निशिवासर औ घर में घृत दीप बरैंगे॥
"विष्णु" सुपुत्र कलत्र धरा धन होंय सदा शिर चौरे ढुरैंगे।
क्यों नर धीर न धीर धरै ध्रुव धैरज से दिन फेरि फिरैंगे॥

(३)

कारन दुःख विदारन है जगतारन क्यों न सहाय करैंगे।
हेरि हरी विपदा सिगरी हरिकी हमरी हरि क्यों न हरैंगे॥
"विष्णु" भला सुनि हैं कसना उनके जब द्वारपै आप परैंगे।
क्यों मन धीर न धीर धरै ध्रुव धीरज से दिन फेरि फिरैंगे॥

(४)

जिन जन्म दियो रहिं भूलि गयो न जिता सुत के हितमें नित माते।
नहिं दान दियो न सुकर्म कियो कबहूं न भये हरिके रँग राते॥
सब आयु प्रकारथ खोइ दई अब ये हू चले दिन हैं सब जाते।
कवि 'विष्णु' की टेर लगाई नहीं फिरकार अहैं चतुराई की बात॥

साधारण योग

गतांक से आगे

नियम

(ले० जमुना प्रसाद श्रीवास्तव)

नियम पांच हैं यथाः-१ शौच, २ संतोष, ३ तपस्या, ४ स्वाध्याय और ५ ईश्वर प्रणिधान। प्रति दिन इनका अभ्यास करना प्राणी मात्र का कर्त्तव्य है।

१ शौच

बचन शुद्ध, मन शुद्ध अरु इन्द्रिय संयम शुद्ध।
भूत दया अरु स्वछता, पर्त्तअर्थन यह शुद्ध॥

शुद्धता और शुद्धभाव से रहना शौच कहाता है। यह दो प्रकार का है। शारीरिक और मानसिक।

मल त्यागना, हाथ मुँहधोना, दातौन करना, न्हाना-धोना, कपड़े मैले न रहने देना और स्वभाव में आलस्य न आने देना आदि शारीरिक शौच है। साधु असाधु सब ही इनका पालन करते हैं, परन्तु उनका भाव एक दूसरे के विपरीत होता है। इसी से उनका फल भी न्यारा न्यारा होता है।

सुखी प्राणियों में मैत्री की, दुखी प्राणियों में करुणा की, पुण्यवानों में हर्ष की और पापियों में उपेक्षा की भावना, रखकर, चित्त से ईर्षा, अपकार करने की इच्छा, गुणी में दोष देखना और क्रोध आदि दूर करने को मानसिक शौच कहते हैं।

साधु पुरुष धर्म कर्म, पूजा पाठ, व्रत, सत्संग आदि में लवलीन रहते हैं। इससे उनका हृदय कुवासनाओं से रहित तथा परोपकार, दया आदि शुभ वासनाओं से परिपूर्ण रहता है, ज्ञान प्राप्त करते तथा पापके बन्धन से मुक्ति होने की अभिलाषा उन्हें सुमार्ग की ओर लेजाती है। घृत, दूध, फल आदि सात्विक पदार्थ भोजन करने से पापकी रुचि दूर होती है, तथा उनका रक्त शुद्ध होकर

मानसिक शक्तियें जाग उठतीं हैं और अपना२ कार्य करने लगती हैं।

इसके विपरीत असाधु पुरुषों का मन काम, क्रोध, मोह, छल, कपट, ईर्षा आदि दुष्ट भावनाओं से मलिन और अपवित्र रहता है। वे मांस मदिरा आदि निंदित पदार्थों का भोजन करते हैं, शत्रुओं को उत्तेजित करने वाली लहरें उनके हृदय में हिलोरें मारा करती हैं, जिससे वे जुआ, व्यभिचार आदि दुर्व्यसनों में फंस कर दुःखित होते हैं।

'शौचांग जुगुप्सा परैरसंगश्च।

शौच की सिद्धि से अपने शरीर से घृणा उत्पन्न होती है और दूसरे के संग रहने तथा उनके शरीर स्पर्श करने की इच्छा दूर होजाती है।

'सत्व शुद्धि सौमनस्यैकाग्रेंद्रियात्मदर्शन योग्यत्वानि।

मानसिक शौच से सत्व बुद्धि सौमनस्य (खेद रहित और परम तृप्त मन) एकाग्रता, इन्द्रिय जय और आत्म दर्शन की योग्यता प्राप्त होती है।

शौच के साधन की सिद्धि हो जाने पर साधक की दशा बिलकुल बदल जाती है और ऐसा प्रतीत होने लगता है मानो हृदय में धर्म जीवन का सुख रूपी दीपक प्रज्वलित हो उठा है।

२-संतोष

इच्छित सब सुख के हि मिलें, जब सब देवाधीन।
याहि तें संतोषहि धारण, चाहिय चतुर कह कीन॥

संतोष सबर को कहते हैं। ज्ञानी लोगों ने इसे मुक्ति के तुल्य माना है। एक राजाने अपने वज़ीर से पूछाः-संतोष का क्या अर्थ है? वज़ीर ने कहा महाराज! बन्दीखाने में एक ज़ीरक नाम का बन्दी है वह इसका अर्थ बता सकता है। राजा ने उसे बुलवाया। उसने उपस्थित होकर प्रार्थना कीः-"महाराज! ऐसे स्थान पर जहां बारह कोस तक बन ही बन हो चलिये।" राजा ने कहा अच्छा! वहीं चलो। और तीनों जने सुन्नसान जंगल में जा पहुंचे। ज़ीरक ने पूर्व की ओर हाथ करके कहा देखिये! इस ओर क्या है? दोनों ने कहा बड़ी भारी सेना तलवारें खींच कर लड़ने को ललकार रही हैं। फिर दक्षिण की ओर देखने को कहा। वहाँ दूसरी सेना लाल वर्दी सहित, हाथ में बन्दूक लिये तैय्यार थी। पश्चिम की ओर संकेत किया। वहां खाकी वर्दी की सेना तोपें चलाने के फिकर में थी। यह दृश्य देख, राजा साहिब और वज़ीर दोनों डर गये, और बोलेः-हमको बचाओ। ज़ीरक ने चुटकी बजाई। संपूर्ण सेनाऐं अन्तर्ध्यान होगई। ज़ीरक ने कहा महाराज! आपने देखा मुझमें कितनी शक्ति है यदि चाहूं तो दम भर में दोनों को ठिकाने लगादूं। परन्तु फिर भी बन्दी खाने का कष्ट भोग रहा हूं। राजा ने कहा सच है। और उसे उसी समय मुक्त कर दिया।

किसान अटूट परिश्रम करके खेत जोतकर, और घर का नाज पृथ्वी में डाल कर चला आता है। समय पर मेह बरस गया तो परिश्रम सफल हो जाता है। यदि कम बरसा तो कुऐं आदि से सिंचाई करके तीन चार महिने सिर तोड़ परिश्रम करता है अन्त में सबको दे दिवा कर जो कुछ बचता है उसे बेच कर माल गुज़ारी लगान और महाजनों का करजा चुकाता है और आप नंगा उघारा भूख प्यास सह कर मज़ूरी आदि करके अपना और अपने बाल बच्चों का उदर पोषण करता और संतुष्ट रहता हैः-

यह संतोष हैः-

'संतोष एव सर्वं सुखस्य परं निदानम्'।

अर्थात् संतोष ही सर्व सुखों का मूल है।

३-तपस्या

देश काल ऋतु आदि परिस्थितियों के

अनुसार शरीर को शीत उष्ण आदि कष्टों के सहने योग्य दृढ़ बनालेना तपस्या है। शीतल जल से स्नान करने से शरीर और मन का उत्साह बढ़ता है तथा सर्दी से होने वाले जुकाम आदि रोग दूर होते हैं। जो लोग उष्ण जल से स्नान करते हैं उन्हें धीरे २ उष्णता का प्रमाण कम करके, दो तीन महीने में शीतल जल से स्नान करना आरंभ कर देना चाहिये। इसी प्रकार जो लोग उष्णता सहन करने का अभ्यास करना चाहते हैं। उन्हें थोड़ी देर खुले शरीर धूप में बैठना और फिरना चाहिये। इससे उनके शरीर का तेज बढ़ेगा और उन्हें आरोग्यता प्राप्त होगी। चलने फिरने, दौड़ने, तैरने, व्यायाम आदिका अभ्यास करने से शरीर स्वाधीन और दृढ़ होता है। अधिक भोजन करना उचित नहीं है परन्तु अधिक उपवास भी नहीं करना चाहिये। पन्द्रह दिन में एकआध समय का लंघन आरोग्य दायक होता है। दिनमें दोवार भोजन करना चाहिये। जो लोग दिनमें तीन २ चार २ वार भोजन करते हैं उनका स्वास्थ ठीक नहीं रहता।

अधिक सोना, और अधिक जागना बहुत बुरा है। अधिक सोने से सुस्ती और अधिक जागने से खुश्की बढ़ती है। बिलकुल आराम न करने से आरोग्य स्थिर नहीं रहता। अधिक व्यायाम करने से हृदय आदि अवयव क्षीण होते हैं। और बिलकुल व्यायाम न करने से शरीर स्थिल होता है। इसलिये ऐसा अभ्यास करना चाहिये जिससे शरीर को शीत, उष्ण तथा थोड़ा बहुत कष्ट सहने का अभ्यास हो जावे। शरीर को नाजुक मिज़ाज तथा विलासी नहीं बनाना चाहिए वरन परिश्रमी और दृढ़ बनाना उचित है। इन्द्रियों की लालसा न्यून करना भी तपस्या का अंग है। जिह्वा मीठे २ पदार्थ खाना चाहती है, परन्तु बहुत मीठे पदार्थ खाने से शरीर रोगी रहता है। अन्य इन्द्रियों का भी यही हाल है। इसलिये इन्द्रियों को वश में रखने का उद्योग करना चाहिये।

परोपकार के कामों और सत्पुरुषों की सहायता करने में तत्परता दिखाने तथा अन्य शुभ कामों में शरीर अर्पण कर देने से कष्ट सहन करने की शक्ति बढ़ती है। असत्य न बोलना तथा सत्य बोलने का प्रण करना वाणी तप है। साधारण अवस्था में सत्य बोलना कठिन नहीं है परन्तु विशेष प्रलोभन मिलने पर सत्य बोलना बड़े निश्चय का काम है। बोलने का ढंग प्रिय और परिणाम हितकारक होना चाहिये। दूसरे के छिद्र, व्यंग, दोष, हीन आचार विचार आदि का वर्णन करने तथा व्यर्थ उपहास करने से वाणी मलिन होती है इससे बचना अति उत्तम है।

मन मानी पुस्तकें भी नहीं पढ़नी चाहियें। पढ़ने के लिये ऐसी पुस्तकें चुन लेना चाहिये जिनसे विचार पवित्र हों तथा ज्ञान की वृद्धि हो।

४-स्वाध्याय

वेद, गीता, रामायण, भक्तिमाल आदि ज्ञान मूलक सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना स्वाध्याय है। प्रतिदिन इनका अध्ययन और आलोचना करने से चित्त एकाग्र होता है, अनेक गुप्त रहस्य प्रकट होते हैं और यह मालूम होने लगता है कि मैं कौन हूं? जगत क्या है? ईश्वर क्याहै? मैं क्यों आया हूं? और मैं कहां जाऊंगा?

पूजा पाठ, स्तुति, मंत्रोच्चारण, भगवद्भक्त साधुओं से सत्संग करना और उनके सौन्दर्य तथा माधुर्य आदि का अनुभव करना भी स्वाध्याय है। प्रति दिन इसका अभ्यास करने से मनकी चंचलता मिटजाती है। वह सदैव शांत रहता है। और खेद, भीति, निरुत्साह और अशान्ति आदि

व्याधियां पास नहीं आती। अन्तःकरण उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त होता है। दृष्टि दिव्य हो जाती है और साधक देवी देवताओं आदि के दर्शन करने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है।

'स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः।'

५ ईश्वर प्रणिधान।

'तज्जपस्तदर्थ भावनम्'।

निष्काम भक्ति से ईश्वरोपासना करने को, प्रणिधान कहते हैं। संम्पूर्ण शक्तियों और सिद्धियों की जड़ एकाग्रता है। एकाग्रता का मुख्य साधन जप है। जप करने के लिये सब से उत्तम, श्रेष्ठ, प्रभावशालि और शक्तिशाली मन्त्र 'ओम' है। यही ईश्वर वाचक है।

'तस्य वाचकः प्रणवः'

यही है नाम ईश्वर का, यही सब जग को प्यारा है।
ऋषि मुनियों के जीवन का, यही केवल अधारा है॥

प्रणव का जप और उसके अर्थ की भावना श्रेष्ठ ईश्वरोपासना है। सांसारिक काम करते हुए भी योगी इसी ज्ञान और ध्यानमें निमग्न रहते हैं:-

तुलसी ऐसा ध्यान कर, जैसे ब्याई गाय।
मुख से तृण चारा चुगे, चित्त निज बत्सहिं माय॥

और भीः-

कर ते कर्म करे विधि नाना। मन राखे जहं कृपा निधाना॥

निरन्तर प्रणव जप और उसके अर्थ का ध्यान करते २ चित्त निर्मल और एकाग्र होने पर प्रत्यक चेतन अर्थात् हृदय स्थित आत्मा का ज्ञान होता है:-

'ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च'।

अपने शरीर के हृदय को अग्नि उत्पन्न कर देने वाली नीचे की लकड़ी और ओंकार को ऊपर की लकड़ी मान कर निरन्तर ब्रह्म का ध्यान रूपी रगड़ उगाने से अर्थात् प्रणव का जप करते हुये ब्रह्म ध्यान में निमग्न रहने से शीघ्र ही अग्नि के समान अपने में गुप्तभावस्थिति पर ब्रह्म का दर्शन प्राप्त होता है।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवञ्चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्न गूढवत्॥

प्रातःकाल शौच स्नान आदि से निवृत्त हो, शुद्ध एकान्त स्थान पर बैठ जाओ, और मधुर कोमल स्वर से 'ओम' 'ओम' रटने में भिड़ पड़ो। बालक आम चूसता है, आमफट पड़ता है, और उसका रस बालक के हाथ, मुँह, कपड़े और शरीर पर फैल जाता है। उसे न तो कपड़े की, न माता की, और न अपने हाथ, मुँह और शरीर की सुध रहती है। वह रस रूप हो जाता है। इसी प्रकार निरन्तर ओम जपते रहने से, अन्त में वह फूट पड़ता है और रोम २ से 'ओम्' 'ओम्' की ध्वनि निकलने लगती है यहाँ तक कि एक दिन ऐसा आता है कि जप के 'ओम्' में लय हो जाता है। लगातार तीन मास तक तीन घण्टे प्रातःकाल और तीन घण्टे संध्या काल में 'ओम्' जपने से कठिन विपत्ति भी दूर और संपूर्ण कामनायें पूर्ण होती हैं। चलते, फिरते, खाते, पीते, सोते, जागते, और काम-काज करते हुऐ जप करने से सोने पर सुहागे का काम होता है, परमानन्द की प्राप्ति होती और मरने जीने से छुट्टी मिलती है।

(४) आसन

बैठने की रीति को आसन कहते हैं। मनुष्य लोक में इनकी संख्या बत्तीस है परन्तु सर्वश्रेष्ठ चार ही हैं:-

सिद्धासन-बाँये पैर की ऐड़ी उपस्थ के मूल में रख और उस पैर की ऐड़ी पर दाहिने पैर की ऐड़ी रख, स्थिरता के साथ सीधा बैठना।

पद्मासन–दाहिना पैर बांई जांघ पर तथा बांये पैर को दाहिनी जांघ पर रख कर स्वस्थता के साथ सीधा बैठना,

स्वस्तिकासन–दोनों जाँघ और घुटनों के मध्य भाग में दोनों पादतलों को रख त्रिकोणा कार आसन बाँध सरल भाव से बैठना।

योगासन–दोनों चरण चित्त करके दोनों घुटनों के ऊपर, और दोनों हाथ चित्त करके आसन पर रक्खे फिर एक नथुने से वायु खींच कर दूसरे नथूने से निकाले और नासिका के अग्र भाग को देखता रहे।

महात्मा पतञ्जलि ने आसनों का अधिक विस्तार नहीं किया है। उन्होंने केवल इतनाही कहा है:–

'स्थिरसुखमासनम्।'

जिस प्रकार बहुत देर तक स्थिर रह कर सुख से बैठा जाय वह आसन है। प्रहस्थ योगी इनमें से किसी एक को पसन्द करके अभ्यास कर लेवें उसी से काम चल जायगा।

(४) प्राणायाम

प्राण वायु को अच्छी तरह स्थिर करने का नाम प्राणायाम है। इसके तीन भेद हैं। पूरक, कुम्भक और रेचक। दाहिने नथुने को बाँये हाथ के अगूँठे से दबाकर गुदा और उपस्थ को संकुचित करे, फिर सोलह बार ओंकार का मन ही मन जप करते हुऐ, बांये नथुने द्वारा बाहिर की पवित्र वायु को खींचे। यह पूरक है। भीतर भरी हुई वायु को चौंसठ बार ओंकार जपने की संख्या पूरी होने तक रोक रखना कुम्भक कहाता है। कुम्भक करते समय दाहिने हाथ की अनामिका तथा कनिष्टका से बांये नथुने को दबा देवे, और गर्दन सीधी करके दाहिने नथुने से अगूंठा हटा कर नासि को संकुचित कर रोके हुऐ वायु को बत्तीस बार ओङ्कार जपते हुऐ, धीरे २ बाहिर निकाल देवे। यह रेचक है।

पहिले पूरक, फिर कुम्भक, और अन्त में जहां से प्रथम पूरक किया हो तहां से रेचक करें। इसे अनुलोम विलोम प्राणायाम कहते हैं। सांझ, सवेरे, यथा शक्ति अभ्यास करने से नाड़ियां शुद्धि होती हैं। अन्तःकरण का रजोगुण और तमोगुण कम हो जाता है। इससे धारण का अभ्यास करने की योग्यता प्राप्त होती और चिर-काल तक प्राणवायु की गति रुकने से मनोवृत्ति रुक कर निर्मल हो जाती है। यदि यह कठिन प्रतीत हो तो निम्न लिखित साधना करें। हाथ मुँह धोकर ऐसे स्थान पर जहां स्वच्छ और ताज़ी वायु बहती हो पालथी मार कर बैठ जाओ और नाकको हाथ की उंगलियों से पकड़ कर भीतर की वायु ज़ोर से बाहिर निकालदो तदनन्तर धीरे २ स्वाँस भीतर खींचो जब शरीर भर जावे और पुष्ट होकर फूलने लगे उस समय भीतर की वायु को धीरे २ बाहिर निकाल दो। इसी तरह स्वांस खींचो और बाहिर निकालो। कम से कम आध घण्टा प्रातःकाल और आध घण्टा सायंकाल को नित्य प्रति अभ्यास करने से अनेक असाध्य रोग दूर हो जाते हैं और शरीर निरोगी रहता है।

(५) प्रत्याहार

इन्द्रियों को विषयों की ओर से हटा कर मन के आधीन कर देने को प्रत्याहार कहते हैं। इन्द्रियों का संबध बाहिरी विषयों से रहता है इसलिये इन विषयों की धारें इन्द्रियों के छिद्रों के द्वारा इन्द्रिय केन्द्र में से होती हुई मन के पास पहुंचती हैं। यदि मन इन्द्रियों के आधीन हुआ तो वह उन धारों को ग्रहण कर लेता है और जिस प्रकार इन्द्रियां नाच

नचाती है वह नाचता है। यदि मन इन्द्रियों के आधीन न हुआ तो वह उन धारों को ग्रहण नहीं करता और इन्द्रियाँ मन मार कर चुप बैठ रहती हैं। अतएव मन को जो सदा इन्द्रियों के आधीन रह कर उनकी गुलामी करता है। इन्द्रियों की गुलामी से हटा कर उनका अधिपति बना देना चाहिये जिससे इन्द्रियाँ मन के आधीन रह कर उसकी मर्जी के अनुसार कार्य करें।

इन्द्रियों का संचालक मन, और मन का संचालक आत्मा है। यदि हम मनको इन्द्रियों से अलग करलेवे तो हमको इन्द्रिय अथवा शारीरिक कष्टों का दुख नहीं होगा। मानसिक चिकित्सा का मूल मन्त्र यही है। मन को इन्द्रियों से अलग रखने का अभ्यास करलेने से मन में शारीरिक दुखों की संवेदना नहीं रहती। मन स्वास्थ के विचारों से परि पूर्ण रहता है। मन के स्वास्थ पूर्ण विचारों का प्रभाव मन पर पड़ने से शरीर शीघ्र आरोग्य प्राप्त कर लेता है। जिसका मन वश में नहीं है उसके शरीर को औषध से भी लाभ नहीं होता।

योग का अभीष्ट इन्द्रियों के ऊपर मन का अधिपति जमाना, आज्ञा चक्र के तृतीय नेत्र की शक्ति वृद्धि गत करना, और चिन्तामणि की शक्ति का विकाश करना है। इसकी सिद्धि प्रत्याहार के अभ्यास से होती है। योगी का मन पवित्र हो जाता है। वह सदैव प्रफुल्लित और हंस मुख रह कर सदाचारी हो जाता है :-

मन सब पर असवार है, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो कोई विरला एक॥

(६) धारणा

चाह मिटी चिंता गई मनुआ बे परवाह।
जिन्हें कछु न चाहियें वे शाहनपति शाह॥

राग, द्वेष आदि से रहित और यम नियम आदि से शुद्ध किये हुए मन को किसी एक विषय में लगा देने का नाम धारणा है जिसका तात्पर्य यह है कि मनको संपूर्ण विषयों से हटा कर, प्रणव मंत्रोच्चारण (ओम् जप) अथवा आत्म दर्शन में लगा देने का सङ्कल्प कर लेना है।

(७) ध्यान

जिस विषय की धारणा की हो उसी विषय में चित्त की अखण्ड धारा के प्रवाह को बहाने का नाम ध्यान है। जिसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि शरीर के स्नेह से चित्त को मोड़ कर आत्मा के संग जोड़ दिया जावे। नेत्र मूंद कर ध्यान लगाने से ईश्वरी गुप्त भेद प्रकट होते हैं:-

नेत्र मूंदि कर ध्यान लगावे, तब कहि पार हकी की पावे॥

प्रभु के डेरे में चित्त लग जाने से कौन सी अलभलापा है जो अपने आप पूरी न हो:-

'आत्म संयमः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।'

ध्यान करने का ढंग यह है:-

जो कोई या विधि मन को लगावे॥ टेक॥
ज्यों पनिहारी दो दो गगरिया, सीस धरे बहु सांस हिलावे।
बाट चलत बोले सखियन संग, सुरत आपनी घर में बसावे॥
ज्यों नट नटनी चढ़त बांसपर, नाचे गावे ढोल बजावे।
आप सचे देही को साधे, सुरत धार डोरी में लावे॥
जैसे कपिला चरत खेत बिच, ध्यान बछ पर छिन छिन लावे।
पल पल सुमिरे बिसरे नांही, चारा चरत न ताहि भुलावे॥
जैसे सती चढ़त सत ऊपर, पिय सों अपने नेह लगावे।
आप जरे देही को जारे, पिय बिन और न चित में लावे॥
कहत कबीर! सुनो भाई साधो, यह विधि जो कोई मन ठहरावे।
मन थिर तन थिर, सुरत निरत थिर, कैसे न हरि पद पावे॥

(८) समाधि

ध्यान की प्रगाढ़ अथवा गहरी अवस्था को समाधि कहते हैं। समाधि लग जाने पर साधक मस्त होकर परमात्मा में लीन हो जाता है। उसे

अपने भक्ति, तथा अपनेपन का ज्ञान नहीं रहता। वह अपने स्वरूप को जान कर क्रिया रहित ब्रह्म हो जाता है और अपने रूप में आपही रमण करता है। उसके सुख और आनन्द का कहना ही क्या? उसे तो सदाः-

आनन्द ही आनन्द है! आनन्द में आनन्द है!
आनन्द का आनन्द है! आनन्द पूर्ण नन्द है!
आनन्द सत आनन्द है! आनन्द ब्रह्म वेद है!

यह 'साधारण योग' की व्याख्या और प्रति दिन के कार्यों को उचित रूप से सम्पादन करने की परिपाटी है। प्रत्येक देश और श्रेणी के स्त्री पुरुषों को अपना कर्त्तव्य कर्म समझकर इसका अभ्यास करना चाहिये। इसके विना मनुष्य, मनुष्य नहीं किन्तु पशु है।

देव की प्रति।

(ले० 'अभय')

१

करूं मैं कबसे करुण पुकार, सुनोगे कब दुखियों के नाथ।
रात दिन चिन्ता का भण्डार, रहे जीवन के मेरे साथ॥

२

चमारी चञ्चलता का राज, हुआ है मेरे मनपर हाथ,
पतन की पग डण्डी पर फेंक, दिया है मुझको पथ भटकाय।

३

पतन- पथका हूं पथिक अनाथ, साथ है सन्तापों का भार,
अबल-भारत में दीन मलीन, व्यथा का उर में है अधिकार॥

४

पतन-पथका अब होगा अन्त, बताओ हे! दुखियों के देव।
पथिक बन उन्नति-पथका प्राप्त, करूंगा तव चरणों की सेव,

५

दयाकर दृष्टी दीन पर देव, सुनो दुखिया की करुण पुकार।
अबल को दे निज भक्ति दान, सबल कर करो 'अभय' उद्धार॥

भगवान कब मिलते हैं?

(लेखक-"प्रेम-पथ-पथिक")

यह संसार विचित्र है। इसमें अनेक प्रकार के मनुष्य अनेक प्रकार की बातें कहते हैं। अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये पूरा प्रयत्न भी नहीं करते और भगवान को दोषी ठहराते हैं। कुछ जीव तो ऐसे भी हैं जो भगवान् की बात कौन कहे उनके अस्तित्व ही में संदेह करते हैं और कोई २ व्यक्ति कहते हैं कि जो कुछ है प्रकृति ही है भगवान् तो मन घड़न्त हैं क्योंकि अगर सचमुच भगवान् सर्व व्यापी हैं तो मुझे दिखाई क्यों नहीं पड़ते या जो देखते हैं वे हमें प्रमाणित करने के अभिप्राय से दिखा क्यों नहीं देते।

मैं ऐसे भाई से पूछना चाहता हूं कि दियासलाई में भी तो अग्नि मौजूद है और दूध में भी घी और मक्खन है पर ये हमें दिखाई क्यों नहीं पड़ते। दूध मेरे पास रक्खा है उसमें से मक्खन क्यों नहीं निकल पड़ता? उत्तर यही मिलेगा कि दियासलाई को उसके बकस पर लगे हुये मसाले पर घिसना पड़ेगा और दूध को मथना पड़ेगा। किसी कवि ने इसी भाव को बड़ी विचित्रता से चित्रित किया हैः-

बैठे हृदय में हैं हरी पर भक्ति बिन मिलते नहीं।
दूध से माखन जो चाहे, तो बिलोना चाहिये॥

मतलब कहने का यह है कि जब तक हम मथनी से दूध को नहीं मथते तब तक मक्खन नहीं प्राप्त होता है उसी प्रकार जब तक हमारे हृदय में शुद्ध भक्ति का प्रादुर्भाव नहीं होता तब तक दयालु भगवान का दर्शन होना दुर्लभ है। इसलिये जो लोग बिना हाथ पैर डुलाये तथा प्रेम और भक्ति

का सहारा लिये भगवान का दर्शन चाहते हैं वे गूलर का फूल और शशक शृंग का स्वप्न देखते हैं। श्रीगोस्वामी भक्त वर तुलसी दास जी ने कहा है:-

वारि मथे वरु होय घृत, सिकता से वरु तेल।
विनु हरिभजन न भव तरहिं, यह सिद्धांत अपेल॥

ओह कितनी ठोस बात है। यदि इस पर भी भगवान के मिलने में कसर है तो यह तो हमारी कमजोरी है।

सच तो यह है कि भगवान तब ही मिलते हैं जब उनके लिये चाह होती है। जब तक हमें दूसरों का सहारा है तब तक भगवान् अपना कोमल कर आगे बढ़ाने को नहीं, पर जिस समय कोई सहारा देने वाला नहीं उस समय वह दयालु अपने हाथों हमारी सेवा में भी तत्पर हो जाते हैं। तीव्र व्याकुलता होते ही उन्हें वाहन छोड़ पैदल ही आना पड़ता है। जरूरत है भक्ति की, भगवान् तो भक्ताधीन ही हैं।

व्याकुलता होनी चाहिये मछली जैसी। जहां जल से विलग हुई कि अपने प्राणों का न्योछावर करने को तैयार। वह एक क्षण भी जल से विलग नहीं रह सकती। उसने जल ही को अपना जीवन प्राण समझ रक्खा है और अलग होते ही अपने प्राणों को भी अलग कर देती है। बलिहारी है इस प्रेम की। व्याकुलता होनी चाहिये फणि-मणि जैसी। सांप अपनी मणि के उजाले में भोजन की खोज में जाता है और जहां उस मणि का उससे विछुड़न हुआ कि वह भी शरीर छोड़ देता है।

प्रेम होना चाहिये चातक जैसा। जो अपने बच्चों को भी शिक्षा देती है कि चाहे प्राण भले ही चले जायें पर गंगा जल का भी एक बूंद धोखे से भी मत पीना। बस पीना तो वही स्वाति का बून्द। चातक पीयेगा तो स्वाति ही का जल चाहे इसके लिये उसे कितना भी कष्ट क्यों न झोलना पड़े।

प्रेम होना चाहिये चकोर सा। जो चन्द्रमा के प्रेम के लिये अंगारा भी इसलिये खाता है कि यदि मेरा शरीर जल कर खाक भी हो जाये तो इसी मिस से भगवान शिव इस भस्म को अपने मस्तक पर लगायें और वहां प्रीतम से पुनर्मिलन हो जाय। यह है प्रेम प्रकाष्ठा।

भक्ति होनी चाहिये प्रह्लाद सी। जो अनेकों कष्ट सहने पर, विविध ताड़नायें सहने पर और भयंकर से भयंकर दण्ड मिलने पर भी राम राम कहना न छोड़ा। विष का प्याला मिलने पर, सर्पों से उसे जाने पर और अग्नि में तपाये जाने पर भी नारायण, नारायण कहना न छोड़ा।

भक्ति होनी चाहिये मीरा सी। जहर का प्याला भगवान् के चरणामृत के नाम पर हंसते २ पी जाती है। भगवान् की जगह पर काली नागिन भेजी जाती है और मीरा के दृढ़ विश्वास और भक्ति के कारण वह प्राण घातक नागिन सुन्दर शालिग्राम बन जाती है।

इसलिये प्रिय सहृदय पाठको! भगवान् हमें इसी लिये नहीं मिलते कि हमारे में मीन जैसी व्याकुलता, चातक जैसा प्रेम और प्रह्लाद जैसी भक्ति नहीं है। जिस घड़ी और जिस क्षण हमारी वैसी स्थिति हो जायेगी, भगवान् हमारे सन्मुख आखड़े हो जायेंगे। जरूरत इस बात की है कि हम एक पग आगे बढ़े तो भगवान् सौपग हमारी ओर बढ़ जायेंगे क्योंकि उन्होंने अपने श्रीमुख से कहा है कि 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्' जो जिस प्रकार मेरी भक्ति करता है मैं भी उसको वैसा ही फल देता हूं।

भगवान् तो हर समय हमारे निकट हैं लेकिन

हम अज्ञान के कारण उन्हें देख नहीं सकते। सांसारिक झंझटों और व्यवहारों में इतने उलझे हुये हैं कि हमें मरने का भी अवकाश नहीं तो भला विचार ने की बात है कि वह हमें कैसे मिलें। बिना परिश्रम तो मुंह में कवल भी नहीं जाता तो भगवान् इतनी आसानी से कैसे मिल सकते हैं अभिप्राय यह है परमात्मा तभी मिल सकते हैं जब हम उन्हें सच्चे हृदय से पुकारें। जिस समय हमारी विनम्र प्रार्थना उनके कानों में पहुंचेगी उसी समय वह उपस्थित हैं।

हम तो अपने जीवन–दैनिक जीवन का थोड़ा समय भी भगवान् को देना नहीं चाहते और चाहते हैं बड़ी वस्तु। आवश्यकता है कि चौबीस घण्टे में कम से कम एक घंटा भी हम अपना समय एकांत के लिये रख छोड़ें। उस समय संसार की सारे झंझटों को दूर हटा कर भगवान् की उपासना में ही लगादें। उनसे प्रार्थना करें, उनके आगे शिर झुकायें, उनकी स्तुति करें और उनके लिये रोते २ अपनी आखों को आंसू विहीन कर डालें। यदि इतना भी हम कर सकें तो वह समय आवेगा जब हम उनके लिये छट पट करने लगेंगेऔर उनके वियोग को सह नहीं सकेंगे। बस, पी बारह है। भगवान् दर्शन देंगें और चिर–पिपासित को दर्शन दान रूपी जल देकर हृदय को शीतल कर देंगे।

कुछ लोग कहेंगे कि यह मन घड़न्त बात है। मैं उनसे करबद्ध प्रार्थना करता हूं कि कम से कम एक महीना भी इसका अभ्यास कर देखें। फिर हाथ कंकन को आरसी क्या? भगवान् योगीराज स्वयं कहते हैं:–

मन्मनाभवमद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रति जाने प्रियोऽसि मे॥

अर्थात् तू मुझ में ही अचल मन वाला हो, मेरा ही भक्त हो, मेरा ही पूजन कर, मुझे ही नमस्कार कर, ऐसा करने से मुझ को ही प्राप्त हो जायगा। यह मैं तुझ से सत्य ही कहता हूं क्योंकि तुम मेरे प्रियवर हो।

अहा! भगवान् के मुखारविन्द से निकले हुये शब्द कितने स्पष्ट हैं। फिर भी आनन्द कन्द श्रीकृष्णचन्द्र इससे भी स्पष्टतर शब्दों में क्या कहते हैं जरा ध्यान दे सुनिये:–

सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

अर्थात् हे भक्त अर्जुन! सब कर्मों को छोड़ कर केवल मेरी शरणागति में आजाओ। मैं तुम्हें सब पापों से छुड़ा दूंगा इसके लिये शोक मत करो।

प्रिय पाठको! भला इससे बढ़ कर और क्या भगवान् कहें। कितने थोड़े और स्पष्ट शब्द में कितनी बड़ी बात कह रहे हैं। वह सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर लेने को तैयार हैं केवल शरणागति में आने को कहते हैं। इतना उत्तरदायित्व तो सांसारिक मनुष्य भी नहीं ले सकता। इतने पर भी यदि हम देर करते हैं तो यह हमारी ओर से अवहेलना और आलस है। भगवान् तो अपना हाथ पकड़ाने को तैयार हैं लेकिन हम पकड़ना नहीं चाहते। वह तो हमें खिलाना चाहते हैं पर हम अपना मुंह खोलना नहीं चाहते!

भगवान तो भाव के भूखे और प्रेम के प्यासे हैं। हम जो उन्हें भोग लगा कर प्रसाद पाते हैं उसमें बड़ा भाव भरा हुआ है। यदि किसी ने हमें एक लाख रुपया दिया और हमने उन्हें एक रुपया दिया तो यह तो हमारी ढिठाई हुई पर यदि प्रजा राजा को कुछ चढ़ाती है तो राजा तो केवल उसके भाव के कारण ही ग्रहण करता है इसी प्रकार भग-

वान् भी भाव के भूखे हैं न कि पकान के कवि कुल शिरोमणि सूरदास जी कहते हैं:-

सब सो ऊंची प्रेम सगाई
दुर्योधन की मेवा त्यागी, साग विदुर घर खाई ॥
जूंठे फल सबरी के खाये, बहु विधि स्वाद बताई।
प्रेम के बस नृप सेवा कीन्हीं, आप बने हरि नाई ॥
राजसु यज्ञ युधिष्ठर कीन्हों, तामे जूंठ उठाई।
प्रेम के बस पारथ रथ हांक्यो, भूलि गये ठकुराई ॥
ऐसी प्रीति बढ़ी वृन्दावन, गोपिन नाच नचाई।
सूर क्रूर इहि लायक नाहीं कहं लगि करौं बड़ाई ॥

भगवत् कीर्तन

(ले० स्वामी आत्मानन्द जी)

महात्मा गण कहते हैं कि शास्त्र का अभ्यास करने का फल यह है कि इससे धर्म अधर्म का भेद मालूम पड़जाता है। धर्म पालन से कितना लाभ होता है और अधर्म से कितनी हानि, नरक के दुःख कैसे भयंकर हैं, मोक्ष का आनंद कैसा अलौकिक है, जीवन कैसा क्षण भंगुर है, संसार के सुख कैसे क्षणिक हैं, प्रभु के लिये भक्तों ने कैसे कैसे कष्ट सहन किये हैं, सद्वस्तु क्या है और किस प्रकार जीवन बिताने से कल्याण हो सकता है ? यह सब समझना तथा उसी के अनुसार चलना ही शास्त्र पढ़ने का हेतु है और इस प्रकार जीवन सुधार कर आत्मा का उद्धार हो यही शास्त्र पढ़ने का फल है। वैसे ही महामंगलकारी, शांति दाता, अखंड-आनंद स्वरूप, परम कृपालु, परमात्मा का गुण गाने से पाप छूटता है। हृदय में उत्तमता और भगवत् प्रेम आता है, माया का मिथ्या पन समझ में आजाता है और जीवन सुधर जाता है तथा प्रभु के साथ प्रेम बंधता जाता है, इससे महात्मागण कह-गये हैं, कि प्रभु के गुण गाने वालों को शास्त्र पढ़ने का फल मिलता है। तीव्र बुद्धि वाले, उत्तम संस्कार वाले तथा उत्तम साधन वाले जो होते हैं वे ही शास्त्र पढ़ सक्ते हैं और तब भी हजारों में कोई एक ही शास्त्र पढ़ने का फल, जो कि "जीव को ईश्वर मय करना है" इसको प्राप्त कर सकता है। बाकी सब शब्दों की मारा मारी में तथा पंडिताई की पोल में ही रह जाते हैं श्रीहरि का गुण गाने में ऐसी कोई कठिनता नहीं है, यह तो सबसे सरलता पूर्वक हो सकता है। इस से शास्त्र पढ़ने की अपेक्षा प्रभु का गुण गान करना अधिक श्रेष्ठ है, ऐसा शास्त्रों में कहा है कि "उत्तम साधन आत्म चिंतन है, शास्त्र चिंतन मध्यम है, ध्यान धारणादि निकृष्ट है और तीर्थादि अटन करना अधम है। इसलिये ईश्वर गुण गान करो क्योंकि यह हृदय के भाव से होता है और श्रुतियों और व्यास सूत्र यानी वेदांत शास्त्र में भी भगवत् यानी आत्मा की प्राप्ति हृदय देश में ही कथन की है इससे ईश्वर का गुणानुवाद करना ही सब साधनों में श्रेष्ठ है।

श्रीभगवत गीता में श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा है कि, हे अर्जुन, तू सब पापियों से भी अधिक पापी हो तो भी क्या ? ज्ञान रूपी जहाज से पाप रूपी महा सागर से तर जायगा। फिर कहते हैं हे अर्जुन, जैसे अग्नि घास को जला डालती है वैसे

ज्ञान पाप को नष्ट करदेता है। अभी भी ईश्वर के ज्ञान की महत्ता बताने में भगवान् को संतोष नहीं हुआ है, इससे वे कहते हैं कि ज्ञान समान पवित्र कार्य और दूसरा कोई नहीं है, किन्तु यह ज्ञान धीरे धीरे मिलता है। अभी भी ज्ञानकी विशेषता बताते हुए भगवान् की तृप्ति नहीं हुई है, इससे वे कहते हैं कि भक्त सब अच्छे हैं किन्तु ज्ञानी तो मेरी आत्मा है।

ज्ञान की ऐसी महत्ताहै क्योंकि ईश्वर स्वयं ज्ञान स्वरूप हैं, इससे "ज्ञानी मेरी आत्मा है" ऐसा प्रभु कहते हैं। ज्ञान के ऐसे उत्तम होने का कारण यह है कि इससे यह विश्वास होजाता है कि ईश्वर सत्य है तथा और सब मिथ्या है। सत्य जानने से जीव ईश्वर में तल्लीन होकर ईश्वरमय होजाता है और बिना किसी स्वार्थ के स्वाभाविक आकर्षण से ही आत्मा परमात्मा की ओर आकृष्ट होजाती है। इतना ज्ञान होजाने पर भी आत्मा परमात्मा के बीच में कोई पर्दा नहीं रहजाता और इसी से प्रभु कहते हैं कि 'ज्ञानी मेरी आत्माहै।' यह महत्तत्व जान लेने पर जिनका विकार दूर होगया हो, ईश्वरकी महिमा जान ईश्वरमय हो गये हों, जीवन की क्षणभंगुरता तथा माया का मिथ्यापन जानकर जो तटस्थ साक्षी रूप बनगये हों और स्वभावतः लोह चुम्बक के समान निस्वार्थ भाव से जिनकी आत्मा परमात्मा की ओर खिच गई हो तथा ज्ञान रूपी दिव्य चक्षु से जिन का जीव तथा ईश्वर को बीच का पर्दा हटगया हो, ऐसे प्रेमी अभेद दृष्टि वाले महाज्ञानी ईश्वर का गुण गान के अतिरिक्त और कर क्या सकते हैं?

जिसका सब मोह दूर होगया है जो अभेद दृष्टि वाले निर्विकार होगये हैं उनके और हो ही क्या सकता है। जगत मिथ्या है यह समझ में आजाय और एक ईश्वर के अतिरिक्त जिसे और कुछ नहीं दिखाई पड़ता, उनकी जगत के किसी काम में क्या आसक्तिहोसकती है? किसी में उनकी आसक्ति रह नहीं सकती। तिस पर भी ऐसे महाज्ञानी भक्त गण सहज समाधि की स्थिति में रहने पर भी महान् ईश्वर का कीर्तन किया करते हैं और उसकी महिमा सोचा करते हैं।

ऐसा होने में जन्म जन्मांतर में जो ज्ञान प्राप्त होता है जिससे बड़े से बड़ा तथा उत्तम से उत्तम कर्म सधता है। बड़ कार्य मनुष्य की जानकारी में सर्व शक्तिमान् ईश्वर का कीर्तन ही है। यह महान् कार्य ईश्वर का कीर्तन करने वाले भक्त सर्वदा किया करते हैं। इससे महान् ईश्वर का कीर्तन करने से ज्ञानका भी समावेश होजाता है, क्योंकि सच्चे भाव से तथा शुद्ध अंतःकरण से ईश्वर का गुण गाने से धीरे धीरे आप ही स्वतः सिद्ध ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। किन्तु ऐसा सच्चा ज्ञान प्राप्त करने में बड़ी कठिनता पड़ती है और यह विरले को ही मिलता है। किन्तु ईश्वर का कीर्तन करने में कीसी को भी कठिनता नहीं पड़ती। यह सबसे हो सकता है, इससे शास्त्र में कहा है कि प्रभु का कीर्तन करने से ज्ञान प्राप्ति का फल मिलता है। नाम का संकीर्तन करना अथवा जाप करना, उसकी महिमा के शास्त्रों का पठन करना फिर मनन करना तत् पश्चात् भक्त गणों को पढ़ाना और उसी का निदिध्यासन करना। कथा आदिका सुनना सुनाना अन्योन्य यानी परस्पर बोधन करना उसी का चिंतन करना उसा का कथन करना। भगवान् की स्मरण कीर्तन पादसेवा आदि नवधा भक्ति जो श्रीभद्भावत में कथन की है अथवा सत्संगादि जो श्रीमर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र जी ने शिवरी भिलनी से कही हैं और भी इनके अतिरिक्त आचार्यों

की युक्ति सब ईश्वर का कीर्तन ही है। सच्चे दिल से इस प्रकार करते करते ईश्वर का ज्ञान अनायास ही प्राप्त होजाता है जिस को पाकर फिर अशुभ संसार में नहीं आना पड़ता।

इस से प्रिय पाठको! आज ही से जिस प्रकार का कीर्तन पसंद हो दृढ़ प्रतिज्ञ बनकर सत्कार पूर्वक निरंतर करना आरम्भ कर दीजिये चूकिये नहीं मनुष्य जन्म सार्थक करलीजिये इस में किसी प्रकार से भी घाटा न पड़ेगा दिन दूना रात चौगुना ही होगा इसमें संदेह नहीं है। परम प्रिय माई भाईयो, उस शांति दाता, आनंद स्वरूप, पवित्र पिता महान् ईश्वर का कीर्तन करो! जगत् पिता जगदीश्वर का कीर्तन करो!! उस विश्वंभरका सच्चे भाव से सर्व समर्पण करके निष्काम होकर कीर्तन करो!!! ईश्वर कीर्तन से ज्ञान प्राप्ति का फल यानी मोक्ष मिलेगा।

प्रभुका नाम स्मरण करने से होने वाले लाभ

ज्यों ज्यों मनुष्यों में प्रेम बढ़ता जाता है त्यों त्यों उनमें सद्गुण भी बढ़ते जाते हैं, उनमें सब से प्रथम ये हैं:-

१-प्रभु प्रेमी को जगत् का मिथ्यापन समझ में आजाता है और ईश्वर का सत्य स्वरूप बिना पढ़े लिखे समझ में आजाता है।

२-शास्त्रों में कही हुई बहुत सी बातों में से अपने कल्याण के लिए आवश्क विषय अपने आपही समझ में आजाते हैं।

३- बिना पढ़े लिखे अपने आपही हृदय में उत्तम से उत्तम ज्ञान प्रकाश होजाता है।

४-संकट के समय यथा तथा पेचदार बातों में हमें कैसे वर्ताव करना चाहिये इसका ज्ञान हृदय में होजाता है।

५-धर्म का पालन करने में जो जो संकट और अड़चनें पड़ती हैं उन्हें भोगने की शक्ति आजाती है।

६ अमने मन में प्रतिदिन प्रेम आता है। जिससे ईश्वर का अधिक से अधिक गुण गान करने की शक्ति बढ़ती है।

७-जगत के कल्याण के लिये तथा अपने भाई बहिनों की भलाई में लगे रहने की इच्छा दिन दिन बढ़ती जाती है।

८-पाप करने की इच्छा बिलकुल होती ही नहीं और यदि कभी होती भी है तो वह दिन पर दिन बहुत ही कम पड़ती जाती है और अंत में पाप की इच्छा बिलकुल नष्ट होजाती है।

प्रभुका पवित्र नाम स्मरण करने वाले प्रेमी भक्तों का इस के अतिरिक्त और भी बहुत से लाभ होते हैं।

१-उनके अंतःकरण में सदा आनंद रहता है

२-परमार्थ करने के लिये सर्वदा उनका मन चलायमान रहता है और इसी में उन्हें आनंद मिलता है।

३-ईश्वर का गुण गान करने में तथा दूसरों से ईश्वर की भक्ति कराने में उन्हें बहुत आनंद मिलता है।

इसके अतिरिक्त और भी बहुत से लाभ होते हैं, इससे प्रिय पाठको! माई भाइयो! जैसे हो तैसे सर्वशक्तिमान् महान् ईश्वर के पवित्र नाम का स्मरण करने का प्रयत्न करो।

———

जीवन्मुक्ति के साधन।

(ले० श्री महात्मा राम)

तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय, मनोनाश, ये तीनों जीवन्मुक्ति के साधन हैं। इन तीनों की बारम्बार आवृत्ति करने को अभ्यास कहते हैं। एक साथ ही चिर काल तक तत्त्वज्ञानादिक तीनों साधानों का अभ्यास किया हुआ जीवन्मुक्ति का साधन होता है। कारण यह है कि तत्त्वज्ञान, वासनाक्षय, मनोनाश इन तीनों का परस्पर कार्य कारण भाव संबन्ध है। इन तीनों साधनों के अभ्यास से जीवन्मुक्ति की सिद्धि होती हैं। इसलिये ये जीवन्मुक्ति के साधन कहे जाते हैं। तत्त्वज्ञान और वासनाक्षय इन दोनों का कार्य कारणभाव दिखलाते हैं।

आत्मैवेदं सर्वम्, इदं सर्वं यदयमात्मा ।
ब्रह्मैवेदं सर्वम्, अयमात्माब्रह्म ॥
पुरुष एवेदं विश्वं, ब्रह्मैवेदममृतं ।
पुरस्ताद्ब्रह्मपश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ॥
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।

यह दृश्य मान् सर्व जगत आत्म रूप ही है। और यह जो कुछ दृष्टि में आता है वह सब आत्मा ही है। यह सर्व प्रपंच ब्रह्म है तथा यह आत्मा भी ब्रह्म है और यह समस्त विश्व पुरुष रूप है। अविनाशी ब्रह्म ही अग्र भाग में है और ब्रह्म ही पृष्ठ भाग में है ब्रह्म ही दक्षिण में है ब्रह्म ही उत्तर में है नीचे तथा ऊपर सर्वत्र में ब्रह्म ही फैला हुआ है बहुत क्या कहिये यह सब कुछ ब्रह्म का ही स्वरूप है।

ब्रह्म से भिन्न जो कुछ दृश्य पदार्थ है वह सब मिथ्या है पारमार्थिक एक आत्मा ही सत्य है। इस प्रकार आत्मा से भिन्न सर्व प्रपंच का मिथ्यत्व निश्चय होने पर आत्मतत्व के साक्षात्कार हुए सर्व विषय विकारों के अभाव हुए रागद्वेषादि रूप वासना भी क्षय हो जाती है और उपरोक्त तत्वज्ञान के अभाव हुए विषयों में रागद्वेषादिक वासना भी बनी रहती है। जगत् के पदार्थों में सत्यत्वबुद्धि होने से उत्तरोत्तर वासना का प्रवाह बढ़ता ही चला जाता है निवृत्ति कदाचित भी नहीं होती। इस प्रकार के अन्वय व्यतिरेक से तत्वज्ञान को वासना क्षय के प्रति कारणता सिद्ध है। इसी प्रकार वासना क्षय को तत्वज्ञान के प्रति कारणता है। विवेक द्वारा तथा विषयों में दोष दर्शन द्वारा तथा मैत्रि करुणादिक विरोधि वासना के अभ्यास द्वारा जब इस अधिकारी पुरुष की रागद्वेषादि रूपवासना नाश हो जाती है तब श्रुति और आचार्य के प्रसाद से शुद्ध मन में तत्वज्ञान का उदय होता है। और वासना क्षय के अभाव हुए रागद्वेषादिक मल से दूषित मन वाले पुरुष के अन्तःकरण में शमदमादिक साधनों का भी अभाव होगा और शमादि षट् संपत्ति के अभाव हुए श्रवण मननादिक भी नहीं संभव होंगे फिर तत्वज्ञान तो हो ही कैसे सकेगा। इस प्रकार के अन्वय व्यतिरेक से वासना क्षय को तत्व ज्ञान के प्रति कारणता है।

तत्वज्ञान और मनोनाश इन दोनों का भी

कार्य कारण भाव है। तत्वज्ञान के उत्पन्न होने पर समस्त प्रपंच का मिथ्यात्व निश्चय होता है। तदनन्तर सर्व प्रपंच का शुक्ति में रजत की न्याँई बाध हो जाता है। जैसे दूर पड़ी हुई सीपी में चांदी की प्रतीति होती है पश्चात् हाथ में लेकर देखने पर सीपी के अवयवों के प्रत्यक्ष होने पर भ्रम से प्रतीत होने वाली चांदी का बाध हो जाता है इसी प्रकार आत्म तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव हो जाने के बाद पूर्वकाल में भ्रम से प्रतीत होने वाले समस्त प्रपंच का भी बाध हो जाता है बाधित हुए प्रपंच में फिर मन की भी प्रवृत्ति नहीं होती और आत्मा भी मन का विषय नहीं है इसलिये आत्मा में भी मन की प्रवृत्ति नहीं होती अन्तर बाह्य प्रवृत्ति से रहित हुआ मन निरिन्धन अग्नि के समान, अपने सामान्य रूप अग्नि में लय होजाता है। श्रुति

'यथा निरिन्धनो वन्हि स्वयोनावुपशाम्यति।
तद्वद्वृत्तिक्षयाच्चित्तं स्वयोनावुपशाम्यति' ॥

जैसे काष्ठों से रहित हुआ अग्नि अपने सामान्य तेज रूप कारण अग्नि में लय हो जाता है तैसे अन्तर बाह्य सर्ववृत्तियों से नाश हुआ मन भी अपने चैतन्य अधिष्ठान रूप कारण ब्रह्म में लय हो जाता है। जब मन की 'अहम् त्वाकार' वृत्तियें हीं नहीं रहती तब मन 'अमनत्व' अर्थात् मन का नाश हो जाता है इसी को मनोनाश कहते हैं। आत्म तत्व के ज्ञान से ही मन का नाश होता है आत्मज्ञान के अभाव हुए संसार में सत्यत्व बुद्धि बनी रहती है। उस सत्य बुद्धि के कारण ही संसार के पदार्थों में मन की वृत्तियां फैलती हैं तथा उन पदार्थों में आसक्त होकर जीव को बन्धन में डालती हैं उन बाह्य पदार्थों में आसक्त हुए मन का निग्रह होना अति दुष्कर है। इस प्रकार के अन्वय व्यतिरेक से तत्वज्ञान को मनोनाश के लिये कारणता है। और इसी प्रकार तत्वज्ञान का मनोनाश कारण होता है। समाधि आदि उपायों के द्वारा अभ्यास करने से जिसका मन शुद्धता को प्राप्त हुआ सत्व गुण के प्रकाश वाला होता है तब सर्व अनात्मक वृत्तियों से शून्य हो जाता है। ऐसे शुद्ध सत्ववान् पुरुष को श्रुति (वेद आचार्य के प्रसाद से ब्रह्म का साक्षात्कार होता है) और जिसका मन इस प्रकार के सत्व वाला नहीं हुआ है किन्तु चंचल है। उस विक्षिप्त चंचल मन वाले पुरुष को कदाचित् भी ब्रह्म का ज्ञान नहीं हो सक्ता इस प्रकार तत्वज्ञान के प्रति मनोनाश को भी कारणता है। मनोनाश वासनाक्षय का भी परस्पर कारण कार्य भाव है। वासनाक्षय के अभाव हुए रागद्वेषादिकों से स्थूल भाव को प्राप्त हुआ मन इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता है ऐसे वासना युक्त विषयाकार मन का कदाचित् भी नाश नहीं होता मन का चिन्तना रूप आकार बढ़ता ही जाता है।

और जब कोई प्रकार की वासना नहीं होती है तब मन की वृत्तियां भी नहीं उठती हैं अनेक वस्तुयें अपने आस पास में विद्यमान हैं। परन्तु जिस वस्तु का संस्कार पहले होता है उसी वस्तु का ज्ञान होता है। वासना के अभाव से मन की वृत्तियों का स्वतः ही अभाव रहता है जैसे बीज के बिना अँकुर नहीं ऊगता है तैसे ही वासना के बिना मन नहीं रहता है इस प्रकार के अन्वय व्यतिरेक से वासनाक्षय के प्रति मनोनाश को कारणता है। और मन के नाश होने पर सर्व वृत्तियाँ नाश हो जाती हैं। जब वासना का आश्रय रूप वृत्तियों का ही अभाव हो गया तब वासना कहां रहैं और जिसका मनोनाश नहीं हुआ है उसके मन में अनेक वासना जाल भरा रहता है और वह वासना बढ़ती ही जाती है जिस प्रकार घृतादि सामग्रि से अग्नि

की शान्ति न होकर और अधिक बढ़ जाती है उसी प्रकार अनेक भोगों को भोगने वाले पुरुष का मन भी तृप्ति को प्राप्त न होकर उलटा कामना जाल में फंसता जाता है। इस प्रकार की अन्वय व्यतिरेक युक्ति से मनोनाश को वासनाक्षय के प्रति कारणता है। एवं तत्व ज्ञान, वासना क्षय, और मनोनाश ये तीनों साधन चिरकाल पर्यन्त समकालीन ही अभ्यास किये हुए जीवन्मुक्ति के कारण (साधन) होते हैं, इसी प्रकार श्रीवशिष्ठ जी ने श्रीरामचन्द्र जी के प्रति जीवन्मुक्ति का अभ्यास बतलाया है।

'वासनाक्षय विज्ञानं मनोनाश महामते।
समकालं चिराभ्यस्ता भवन्ति फल दायिनः॥

वशिष्ठ जी कहते हैं हे महामति राम! वासनाक्षय मनोनाश और तत्वज्ञान यह तीनों इकट्ठे ही बहुत काल तक अभ्यास किये हुऐ पुरुष को जीवन्मुक्ति रूप फल के देने वाले होते हैं।

यद्यपि जीवन्मुक्त तत्व ज्ञानी पुरुष को वासनाक्षय मनोनाश आदिकों के अभ्यास की कोई आवश्यकता नहीं है तथापि चित्त की विश्रांति के लिये अमुख्य अकृतोपास्ति अधिकारियों को मनोनाश आदिकों का अभ्यास अवश्य करना चाहिये।

अधिकारी दो प्रकार के होते हैं एक मुख्य अधिकारी दूसरा अमुख्य अधिकारी।

जिन पुरुषों ने सगुण ब्रह्म के साक्षात्कार पर्यन्त उपासना की है तथा परमेश्वर के प्रसाद से विषयों में दोष दृष्टि करके विवेक वैराग्यादिक साधन संपन्न हुए श्रवणादिकों को करते हैं वे पुरुष मुख्य अधिकारी कहे जाते हैं।

ऐसे मुख्य अधिकारियों को तो एक बार गुरु द्वारा श्रवणादिक करके जीवन्मुक्ति में पर्यवसान वाला तत्व ज्ञान उत्पन्न होता है अर्थात् मुख्य अधिकारियों को तत्व ज्ञान के समकाल ही जीवन्मुक्ति होती है। कारण यह है की उन मुख्य अधिकारियोंने तत्व ज्ञान से पूर्व ही सगुण ब्रह्म की उपासना करके चित्त की एकाग्रता रूप विश्रान्ति प्राप्त करली है इसलिये उन अकृतोपास्ति मुख्य अधिकारियों को तत्व ज्ञान के पश्चात् वासनाक्षय तथा मनोनाश का अभ्यास अपेक्षित नहीं है।

जिन्होंने सगुण ब्रह्म की उपासना नहीं की है किन्तु विवेकादिक साधन संपन्न होकर ब्रह्म जिज्ञासा करके गुरु द्वारा परमात्मा के स्वरूप को श्रवण करते हैं वह अमुख्य अधिकारी कहे जाते हैं।

ऐसे अमुख्य अधिकारियों को पूर्वोक्त श्रवणादिकों से आत्मसाक्षात्कार तो अवश्य होता है परन्तु उन्होंने तत्व ज्ञान से पहले वासनाक्षय मनोनाश का अभ्यास पूर्ण रूप से नहीं किया इसलिये उनको वासनाक्षय और मनोनाश के अभ्यास की अपेक्षा रहती है।

यद्यपि जिसको एक बार भी ब्रह्म का साक्षात्कार होगया है उसका अज्ञान नष्ट हो जाता है तथापि वायु वाले स्थान में धरे हुए दीपक के समान प्रारब्ध कर्म के भोग वासना से कंपायमान असंभावना विपरीत भावना रूप प्रतिबन्ध के होने से कदाचित् अज्ञान की निवृत्ति करने में असमर्थ भी हो जाता है।

अतः अकृतोपास्ति अमुख्य अधिकारियों को उपरोक्त असंभावना विपरीत भावना रूप संभावित प्रतिबन्ध की निवृत्ति करने के लिये तत्वज्ञान से पश्चात् भी वासनाक्षय मनोनाश का अभ्यास अवश्य करना चाहिये।

इसी अभिप्राय से श्रीव्यास जी ने ब्रह्म सूत्रों में कहा है।

'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्, आप्रावणात्तत्रापिहि दृष्टम्'।

इस सूत्र से अमुख्य अधिकारियों के लिये अभ्यास की पुनः २ आवृत्ति कही है अर्थात् यह अमुख्य अधिकारी पुरुष गुरु द्वारा श्रवण कियेहुए अर्थको मरण पर्यन्त वारम्वार अभ्यास करता रहे।

महान् गौरव।

[ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी]

सब सुख के भंडार तुम्हीं हो, सर्व गुणों के तुम आधार।
प्रणयी जनका प्यार तुम्हीं हो, नवल सुजन की अभय लीलार,
भोर विभावरी को तुम ही हो, मृग लांछन अति दीप्ताकार॥
अदि देव आदित्य छटा बन तुमहीं जगमें करो विहार।
पुष्प प्रचय पराग तुम्हीं हो, अपने वक्षस्थल का हार,
मूर्तिमान् बन जाते तुम ही, तुम्हीं मूर्ति के पूजन हार॥
राई औ भूधर से भी तुम, बन जाते अणु महदाकार।
निराकार होने पर भी तुम, भावगम्य बनते साकार,
वाणि कह नहिं सकती तुमको, मन नहीं तुमको सके विचार॥
सुन नहिं पाते श्रवण पुटों से, तेरे गुण गौरव का पार।

प्रेम

(ले० भक्त रत्न श्री मथुरा प्रसाद जी)

प्रेमा भक्ति के साधन गत अंकों में लिखे जाकर प्रेम का लक्षण भी दिखाया गया है और महात्माओं की वाणी भी उसकी पुष्टि में वर्णित हुई परन्तु प्रेम पदार्थ की व्याख्या एतावन्मात्र सन्तोष जनक नहीं हो सकती। यदि विस्तार से इस विषय को प्रकाशित किया जाय तो कई ग्रन्थ बन जाँय और इसका अन्त न आवे, तथापि कुछ संक्षेप से इसका विवर्ण और भी आवश्यक प्रतीत होता है।

कोई मनुष्य मोह को प्रेम समझ कर इनके भेद को न जान कर मोह में प्रेम की भावना कर बैठते हैं। जिससे विशुद्ध प्रेम कलंकित हो जाता है। प्रेमयोग पुस्तक के रचयिता महाशय वियोगी हरि लिखते हैं कि किसी के सुन्दर रूप पर चट से मोहित होकर उसकी तरफ व्याकुल हो दौड़ पड़ना मोह या लोभ है और किसी को देख कर अनन्य भाव से उसमें आसक्त हो जाना या रमजाना प्रेम है दूसरों की दृष्टि में चाहे वो बुरा ही हो। मोह में बुद्धि व्यभिचारिणी रहती है और प्रेम में बुद्धि स्थिर और अचल रहती है। इसलिये मोह दुःख रूप है और प्रेम आनन्द रूप, मोह अनित्य और प्रेम नित्य है। मोह स्वार्थ के लिये हुए होता है और प्रेम में स्वार्थ की गन्ध तक नहीं। आकृति (सूरत शकल) में विकार होजाने अर्थात् सौन्दर्य घट जाने से मोह में न्यूनता आजाती है प्रेम में किसी अवस्था में भी कमी नहीं होती वह तो क्षण क्षण में बढ़ता रहता है। प्यारे की निठुराई अथवा उसका किसी दूसरे के साथ प्रेम हो जाने की अवस्था में मोह वाले की प्रीति घट जाती है परन्तु सच्चा प्रेमी (चाहे प्रेम पात्र कितनी ही निठुराई करे कैसा ही गुण-हीन और दूषित हो जाय कभी चित्त उससे हटा नहीं सकता। लैला कोई सुन्दरी स्त्री न थी मजनू से लोगों ने कहा कि तू क्या देख कर उस पर मरता है मजनू ने जवाब दिया कि 'लैलारा बचश्मे मजनूं बायद दीद" अर्थात् लैला को मजनू की आंख से देखना चाहिये।

महात्मा रसखान जी कहते:-

इक अंगी बिन्दु कारन हि इक रस सदा समान।
मनै प्रियहि सर्वस्व जो सोई प्रेम प्रमान॥
रसमय स्वाभाविक बिना स्वारथ अचल महान्।
सदा एक रस शुद्ध सोई प्रेम अहै रसखान॥

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध हो गया कि प्रेम जहाँ कहीं होता है कारण और स्वार्थ के बिना होता है और मोह कारण तथा स्वार्थ दोनों को लिये हुए होता है। महात्मा ध्रुवदास जी ने प्रेम का महत्व इस प्रकार वर्णन किया है:-

और धरम साधन भजन फीके बिन अनुराग।
जैसे बागो बनत नहि जो न होय सिर पाग॥ १॥
प्रेम बिना जो कछु करौ सो लागत नहिं नीक
विविध भांत व्यंजन करौ नोन बिना सब फीक॥ २॥
प्रेम छटा रंचक नहीं विध को भजन अपार।
स्वादी स्वात न पावई घृत बिन ज्यों ज्योनार॥ ३॥
मन तें चंचल नाहि कछु नैक न कहुं ठैरात।
तब ही बस में होत ध्रुव परत प्रेम की घात॥ ४॥
प्रेम भानु के उदयतें मिटत भरम मन केर।
खंड खंड होजाय ध्रुव माया मोय अन्धेर॥ ५॥
जिह तन बन गरजत रहै अद्भुत कोरि प्रेम।
तामें पावें रहन क्यों गज विहंग मृग नेम॥ ६॥
मन पंछी जब लग उड़ै विषय वासना मांहि।
प्रेम बाज की झपट में जब लग आयो नांहि॥ ७॥
नैनन प्रिय मूरत बसे तिह रस रहै समाय।
यह लक्षन सुन प्रेम के और न कछु सुहाय॥ ८॥
साधन करत अनेक जो कोट कोट जग मांहि।
तौउ न आवत प्रेम बिन रसिक कुंवर मन मांहि॥ ९॥
नैनन छलक्यो प्रेम जल भई न तन गति और।
तिह उर कछु कैसे बसें प्रेम रसिक सिर मोर॥ १०॥
रे मन रसिक संग बिन रंच न उपजै प्रेम।
या रस को साधन यही और करौ जिन नेम॥ ११॥

महात्मा नागरीदास जो कृष्णगढ़ रियासत के राजा थे वृन्दावन में विरक्त होकर जा बसे थे। उन्होंने इश्क़ चमन नामक कविता इसी प्रेम के विषय में लिखी है सो भी नीचे लिखी जाती है।

महात्मा नागरीदास जी की बानी

इश्क उसी की झलक है ज्यों सूरज की धूप।
जहां इश्क तहां आप है कादिर नादिर रूप॥
कहीं किया नहिं इश्क का इस्तेमाल संसार।
सो साहब से इश्क को क्या कर सकें संसार॥
शर्मिन्दा जो इश्क से वो देवै सब खोय।
निन्दा शर्दियानें बजै सोहि चुनन्दा होय॥
सब मजहब सब इल्म पर सबै ऐश के स्वाद।
अरे इश्क के असर बिन यह सब ही बरबाद॥
आया इश्क लपेट में लागी चश्म चपेट।
वोही आया खुल्क में और भरैया पेट॥
सीस, काट आगे धरै तापर राखै पाँव।
इश्क चिमन के बीच में ऐसा हो तो आव॥ ६॥
कोई न पहुंचा वहां तक आशिक नाम अनेक।
इश्क चिमन के बीच में आया मजनूं एक॥ ७॥
इश्क खेत से टलेना ना आवें उसके पास।
चश्म चोट से सिर उड़ै धड़ बोलै शाबाश॥ ८॥
पंडित पूजा पाक दिल यह दिमाग मत लाय।
लगै जरब अंखियान की बसै गरब उड जाय॥
ऐ तबीब उठजाउ घर अबस खुए क्या हाथ।
यही इश्क की कैफ यह उतरै सर के साथ॥
गिरें रहैं भीजे रहैं मुतलक भी संभलैं न।
हुस्न पियाला पीय के हुए नशीले नैन॥
इश्क हुस्न की बात क्यों सकै मुखन में आय।
दिल चश्मों के जबां हो तब कुछ कहै सुनाय॥
चश्मों के चश्मे झरैं झरना आवे फिराक।
इश्क चिमन तब सब्ज हो दिल जमीन हो पाक॥

इश्क चिमन आबाद कर इश्क चमन को गाड।
नागर घर बहबूब के इश्क चिमन में आड ॥

इन महात्मा नागरीदास जी की बानी में दो शंका उत्पन्न होती हैं। एक यह जो कहा गया कि-" कहीं किया नहिं इश्क का इस्तेमाल संभार, सो साहिब से इश्क को क्या कर सकै संसार " इसमें प्रश्न उठता है कि संसारी किसी व्यक्ति या वस्तु में मन लगाना तो महत्पुरुषों ने सर्वत्र बुरा कहा है और भगवद्वाक्य गीता में भी वैराग्य को कल्याण का मुख्य साधन बतलाया है। उसके विरुद्ध महात्मा नागरीदास जी ने यह क्या कह डाला। दूसरे " निन्दा शद्दियाते बजें सो हि चुनिन्दा होय " यह भी शास्त्र और लोक मत दोनों के विरुद्ध है। जिसकी अपकीर्ति जगत् में हो उसका मरण समझना चाहिये बल्कि मरण से भी अपकीर्ति (निन्दा) को बुरा कहा है "संभावितस्य चाकीर्ति मरणादतिरिच्यते" तो महात्मा नागरीदास जी ने प्रेमी की प्रसन्नता और महत्व का कारण निन्दा को क्योंकर बतलाया। इन दोनों प्रश्नों का उत्तर सुनिये।

प्रथम प्रश्न सम्बन्धी दृष्टांत

दो मनुष्य एक महात्मा के पास पहुंचे और विनय पूर्वक निवेदन करने लगे "भगवन्! परमात्मा से मिलने का साधन कृपा करके बतलाइये" महात्मा ने उनसे पूछा तुम दोनों को संसार में किसी वस्तु से अत्यन्त प्रेम हो सो प्रकट करो। उन में से एक बोला महाराज! मुझे तो किसी संसारी वस्तु में न कभी प्यार हुआ न मैं जानता हूं कि प्यार प्रीति किस चीज का नाम है। महात्मा ने कहा बस तुम चले जाओ तुम्हें कोई साधन हम बता नहीं सकते। दूसरे ने कहा महानुभाव! मुझे एक वस्तु से प्यार तो है परन्तु जाहिर करने में लज्जा होती है। महात्मा ने कहा कुछ संकोच न करो साफ़ कह दो। तब उसने निवेदन किया महाराज। मेरे पास एक भैंस है उससे मुझे ऐसा प्यार हो गया है कि उसके देखे बिना मुझे चैन नहीं पड़ता और वह भी मुझ से बहुत ही प्यार करती है। तब महात्मा ने एक कोठरी बतलादी कि इस एकान्त स्थान में बैठकर उसी भैंस का निरन्तर ध्यान करते रहो जब हम आज्ञा करें तब बाहिर आजाना, उस जिज्ञासु ने ऐसा ही किया। अवधि पूरी होने पर महात्मा ने कोठरी के पास जाकर किवाड़ खोल दिये और आज्ञा दी कि कोठरी से बाहिर आजा! उस जिज्ञासु ने दरवाजे के पास आकर महात्मा को प्रणाम किया परन्तु कोठरी के दरवाजे पर अन्दर ही खड़ा रह गया। महात्मा ने ज़ोर से कहा-"बाहिर क्यों नहीं आता" जिज्ञासु बोला महाराज! बाहिर कैसे आऊं मेरे सींग इतने बड़े हैं कि इस छोटे से दरवाजे में नहीं समाते अड़ते हैं। महात्मा बहुत प्रसन्न हुए और उसे अपना शिष्य बना कर पास रख लिया और पूरा सन्त बना दिया। तात्पर्य्य यह निकला कि उस जिज्ञासु को भैंस में प्रेम था उसी का ध्यान करने से वह भैंसाकार हो गया जिसको किसी वस्तु के साथ प्रीति है ही नहीं और उसका हृदय अनुराग से सर्वथा शून्य है तो वोह परमात्मा के साथ प्रेम कर ही कैसे सकेगा। इसी प्रयोजन से कहा है। " कहीं नहीं जो इश्क का इस्तेमाल संभार, सो साहिब से इश्क को क्या कर सकै संसार " देखिये महात्मा बिल्व मंगल एक वेश्या पर आसक्त हुए और महात्मा तुलसीदास जी अपनी धर्म पत्नी पर पूरे अनुरक्त थे। इन दोनों को कैसी जल्दी भगवान मिल गये। इसी अभिप्राय से महात्मा नागरीदास ने उपरोक्त कथन किया है। दूसरे प्रश्न का उत्तर आगे निवेदन किया जायगा। (अपूर्ण)

सेन भक्त

[ले० श्री गुरांदित्ता खन्ना]

सेनजी बड़े भगवद्भक्त और परमात्मा के प्यारे हो गये हैं। इनका जन्म १३ वीं शताब्दी में महाराष्ट्र प्रान्त के बोधगढ़ राज्य में हुआ था। और यह बोधगढ़ के तत्कालीन राजा के ही अश्रित थे। एक बार राजाने इनको बुला लाने के लिये अपने नौकर को इनके द्वार पर भेजा। उस समय यह भगवत् पूजा में लगे हुए थे, इसलिये इनकी स्त्री ने कह दिया कि सेन जी घर पर नहीं है। नौकर लौट गया। पर थोड़ी देर बाद राजाने फिर एक नौकर को इनके घर पर भेज दिया और इस बार भी स्त्री ने यह जवाब दिया कि- सेन जी घर पर नहीं हैं। खैर, तीसरी बार फिर राजाने आदमी भेजा और फिर भी वही जवाब पाया जो पहिले दो बार पा चुका था, पर इस बार राजा को पता लग गया कि सेन जी हैं घर पर ही, इसलिये उसे बड़ा गुस्सा आया और उसने हुक्म दिया कि सेन की गठड़ी बान्ध कर उसे नदी में डुबो दो। राजा की यह आज्ञा अभी पालन होने ही वाली थी कि इतने में भक्त भीर भंजन भगवान् स्वयं सेन नाई का रूप धारण कर बड़ी नम्रता से राजा के सन्मुख आ उपस्थित हुए। सेन को देखते ही राजा का सारा गुस्सा जाता रहा, क्योंकि वह दर्शन ही ऐसा था जिससे कि मन के तमाम विकार दूर होकर महान् शान्ति प्राप्त होती है। राजा ने फौरन अपने आदमियों को बुला कर अपनी आज्ञा लौटा ली। सेन रूप शेषशाई भगवान् लगे राजा की हजामत बनाने। राजाने आज से पहिले न जाने कितनी बार सेन से हजामत बनवाई होगी, पर जैसा आनंद इस समय उसे आने लगा, वैसा पहिले कभी नहीं आया। हजामत बनवाते हुए राजा के पास चमेली के तेल की एक कटोरी पड़ी हुई थी, ज्यों ही राजा की निगाह उस तेल पर पड़ी उसके बीच में से उसे भगवान् विष्णु की चतुर्भुज मूर्ति दिखाई दी। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने कटोरी के बाहर निगाह दौड़ाई तो बाहर उसे कुछ भी दिखाई न दिया, लेकिन ज्यों ही उसने फिर कटोरी में निगाह डाली तो फिर वही चतुर्भुज मूर्ति देखने में आई। इससे राजा और भी हैरान हुआ और लगा कभी बाहर आंखें फाड़ फाड़ कर देखने और कभी तेल के बीच निगाह जमा जमा कर देखने। परन्तु समझ में उसकी कुछ न आया कि वास्तव में बात क्या है! खैर, जब हजामत हो चुकी और नाई महोदय जाने लगे तो राजा ने उन का हाथ पकड़ लिया और कहा कि मैं जाने नहीं दूंगा, आप आराम से यहां बैठे रहिये। पर नाई नारायण को कब यह स्वीकार था, इसलिये उन्होंने बहुत अनुनयविनय करके राजा से रुखस्त ले ही ली और आगे को कदम बढ़ाया। राजा आज अपने नाई पर बहुत ही प्रसन्न था, इसलिये उसने नाई के चलते समय उसकी रछौनी (गुच्छी) में मुहरों की एक अंजलि डाल दी। नाई महाराज इन मुहरों से युक्त रछौनी के साथ सेनजी के घर में पहुंचे और चुपके से उस रछौनी को घर में एक कील के साथ टांग कर आप वहाँ से खिसक गये। जब सेन जी पूजा से फारिग हुए और राजा के पास पहुंचे तो राजा ने साधारण रीति से पूछा कि कहिये सेन जी! हो आये वहाँ से, जहाँ आपने जाना था? सेन जी राजा की यह बात सुनकर भौचक्के से रह गये और बोले कि अन्नदाता! मैंने तो कहीं नहीं जाना था, क्या मैंने कभी आप से कहा था कि मैंने कहीं जाना

है। राजा बोला अभी तो आप मेरी हजामत बना कर गये और जाती बार यह कह गये हैं कि मैंने कहीं जाना है, इसलिये अभी आप जाने दीजिये। हाँ, सेन जी! फिर तेल की कटोरी में वही चतुर्भुज मूर्ति दिखाईये न! सेन जी राजा की यह बात सुन कर हैरान परेशान हो गये। यह देख कर राजा ने रछौनी में डाली हुई मुहरों की अंजली का ज़िकर किया और कहा कि उसे तो सम्हाल कर रख आये हैं न! अब तो सेन जी सब माज़रा समझ गये और गद्गद स्वर से बोले कि राजा! आप बड़े भाग्यवान् हैं। जो अभी आप की हजामत बनाने आया था, वह मैं न था, बल्कि साक्षात् भगवान् विष्णु जी थे। हाय उन्होंने मेरे कारण बड़ा कष्ट सहन किया है। मैं बड़ा नीच हूं इत्यादि फिर सेन जी घर पर आये और मुहरों से युक्त रछौनी को देख कर और भी अधिक विश्वास के साथ इस परिणाम पर पहुंचे कि निश्चय ही भगवान् मेरा रूप धर कर राजा के पास गये थे।

इस दिन से सेन जी और भी अधिक भगवद्भक्ति में लीन रहने लगे और राजा साहब भी विशेष रूप से भगवान् के चरणों में लग गये। सेन जी मराठी भाषा के बहुत अच्छे कवि भी थे। उनके बनाये हुए १५० के करीब भजन अब भी मिलते हैं। सेन जी का देहान्त श्रावण कृ० १२ को हुआ था।

हाँ, सेन जी का एक भजन सिक्खों के पूज्य ग्रन्थ आदि श्रीगुरु ग्रन्थ साहब जी में भी मिलता है जो कि हिन्दी में है। उससे प्रतीत होता है कि सेन जी हिन्दी भी जानते थे और बहुत अच्छी तरह से जानते थे। भजन इस प्रकार है:-

राग धनवन्ती

पूरन दीप घृत साजि आरती, वारने जाउ कमला पती ॥
मंगल हरि मंगला, नित मंगलु राजा रामराइ को ॥ १ ॥
अतम दीअरा निरमला बाती, तुही निरंजनु कमला पाती ॥
रामा भगति रामानन्दु जाने, पूरण परमानन्दु बखाने ॥
मदन मूरति भैतारि गोविन्दे, सैणु भणै भजु परमानन्दे ॥

महान् योग

अनादि काल से ऋषि, मुनि, आचार्यों, साधु, सन्त और फक़ीरों द्वारा योग के कितने ही साधनों तथा मार्गों का आविष्कार हो चुका है, जैसे राजयोग, लययोग, हठयोग, निष्काम कर्म्म योग, सुरत शब्दयोग, भक्तियोग आदि। यह समस्त योग पूर्ण हैं। इनमें से किसी एक पर भी ठीक २ चलने से मनुष्य अपने लक्ष को प्राप्त कर सकता है इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। जो लोग किसी एक पथ के अनुगामी होकर दूसरे पथ को अधूरा या न्यून बतलाते हैं वह उनके अपने अज्ञान या पक्षपात का ही कारण हो सकता है अन्यथा कुछ नहीं। चाहे हठ योग द्वारा शरीर को शुद्ध करते हुए चित्त की वृत्तियों का बलात्कार निरोध करते हुए अपने लक्ष की तरफ बढ़ो, चाहे चतुष्टय साधन करते हुए आत्मा का निरन्तर चिन्तन करते हुए वृत्तियों को ब्रह्माकार बनाने का उद्योग करो, चाहे अपनी समस्त इन्द्रियों को और मन को भगवान् के लिये कर्म्म करने में अर्पण करके विरुद्ध भाव को न उठने दो, अथवा अपनी सुरति को शब्द ब्रह्म में लीन करने का साधन करो, बात एक है। झगड़ा कुछ भी नहीं सब ठीक है। जो इन योगों के विरोध का ज़िकर करके वाद विवाद करता है वह किसी एक में भी नहीं लगा हुआ है और न उसने किसी की प्राप्ति ही की है। यह सदैव याद रक्खो। साथ ही यह भी याद रक्खो कि सब

आदमी एक ही प्रकार के साधन करने के योग्य नहीं हुआ करते। यदि ऐसा ही होता तो आचार्यों को इतने योगों का आविष्कार करने की क्या आवश्यकता थी। संसार में कोई काम बिना आवश्यकता के नहीं हुआ करता यह सिद्धान्त की बात है। भिन्न २ प्रकार के साधनों की आवश्यकता है। जिसके शरीर में जड़ता हो, आलस्य हो और जो तमोगुण से आच्छादित हो उसके लिये राज योग का मार्ग उतना शीघ्र फल दाता नहीं हो सकता जितना हठ योग। इसी प्रकार औरों को समझो

इसलिए गुरु को साधक को ठीक २ जांच करके उसकी प्रकृति के अनुसार ही उसको मार्ग पर लगाना चाहिए। यदि गुरु न मिले तो सुबोध साधक को स्वयं अपनी प्रकृति को जान कर अपने आपको उस मार्ग पर डालना चाहिए जो उसकी प्रकृति के अनुकूल हो। यदि योगी ठीक २ रास्ते पर न होगा तब भी योग उसका कल्याण ही करेगा इसमें सन्देह नहीं है क्योंकि भागवान् ने गीता में कहा है:-

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याणकृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति॥

हे पार्थ उसका इस लोक तथा परलोक में नाश नहीं होता क्योंकि हे तात शुभ कार्य करने वाला कोई भी दुर्गति को नहीं जाता।

सब योग समान फल दाता हैं परन्तु फिर भी एक योग महान् योग कहलाता है। उस योग में और योगों से अधिक विलक्षणता यह है कि वह बहुत सरल और त्वरित गति वाला है। उसका साधन सब से अधिक सुख दाई है। वह योग है जो सद्गुरु की प्राप्ति पर उनकी दया से मिलता है। यदि किसी को बड़े भाग्य से सद्गुरु के दर्शन हो जावें और वह अपनी दया करके उसको अपना लेवें तो फिर क्या कहना है? वर्षों तक कठिन साधन करने पर भी जिस कुण्डलनी का जाग्रत करना कठिन होता है वह उनकी कृपा कटाक्ष से एक दम जाग उठती है। सद्गुरु की प्राप्ति पर योग, योग न रह कर खेल रह जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को हंसी खुशी से लड़ाई करा कर पार कर दिया। उसे समाधि नहीं लगानी पड़ी। शम्स तबरेज ने मौलाना रूप को शराब का प्याला पिला कर आत्मा का साक्षात् करा दिया, स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने नरेन्द्र के शरीर पर हाथ फेर कर उसको स्वामी विवेकानन्द बना दिया परन्तु ऐसा होना बड़े ही सौभाग्य की बात है। सद्गुरु कहाँ मिलें? और मिल जावें भी तो उनको पहचाना कैसे जावे? जिस समय भगवान् कृष्ण तो वर्तमान थे परन्तु अर्जुन के सिवाय कोई पहचान न सका। यदि सत्गुरु दया करके अपने को जना भी देवें तब भी क्या है? जब तक मनुष्य में त्याग न हो तब तक वह उनकी कृपा से लाभ नहीं उठा सकता।

सद्गुरु की कृपा का पात्र बनने के लिये भी विवेक, नमनशीलता और निःसंकोच आत्म-समर्पण की आवश्यकता है। सद्गुरु की दया का पात्र बनने के लिये शरणागति सच्ची और पूरी होनी चाहिए, उनके सामने संकोच रहित होकर हृदय को खोल देना चाहिए। यह शरणागति जीव के अंग अंग में हो। अन्तरात्मा उसे माने, बुद्धि भी उसे स्वीकार करे, आन्तर्भौतिक चैतन्य भी उसकी सत्ता के प्रभाव को अनुभव करे केवल इतने मात्र से ही काम नहीं चल सकता। उसके लिए तो जीव को ऐसा चाहिए कि अपने शरीर के बाहरी से बाहरी अंग ये भी कोई चीज अपने लिए दबा कर नहीं रखनी चाहिए। किसी प्रकार की शंका,

बुद्धि का कुछ भी उलट फेर या मन का तनिक भी विद्रोह बाकी नहीं रहना चाहिए। अपनी समस्त वासनाओं का त्याग होना चाहिए। भगवान् ने गीता में कहा है "त्यागात् शान्तिरनंतरम्" गुरु की शरण में जाकर यदि मनुष्य अपनी कोई शर्त रखता है या कोई अंग शरणागति से बाहर रखता है तो वह उतना ही अपनी हानि करता है।

यदि अपनी भक्ति और शरणागति के पीछे तुम अपनी इच्छाओं को, अहंकार की अभिलाषा और अपनी हठों को छिपाए रक्खोगे और फिर यह आशा रक्खोगे कि तुमको उनका दिव्य ज्ञान प्राप्त हो तो यह व्यर्थ ही है। यदि एक तरफ से तुम सत्य के सम्मुख हो जाओ और दूसरी तरफ से आसुरी शक्तियों के लिए अपने द्वार बराबर खोलते रहो तो यह आशा रखना व्यर्थ है कि गुरु तुम्हारे साथ रहेंगे। इसलिए पहले यह देखो कि तुम्हारे अन्दर वह कौन सी चीज़ है जो असत्य है और अज्ञान मय है, उसका सतत त्याग करो तभी तुम गुरु की दिव्य शक्ति को प्राप्त करने के अधिकारी बनोगे। यह मत सोचो कि सत्य और मिथ्या, प्रकाश और अन्धकार, शरणागति और स्वार्थ एक साथ उस स्थान में रह सकते हैं जो गुरु के रहने के अर्पण कर दिया गया है।

कबीर मन तो एक है भावें तहां लगाय।
चाहे गुरु की भक्ति कर चाहे विषय कमाय॥

इस मिथ्या धारणा को त्याग दो कि तुम गुरु भगवान् के निर्दिष्ट पथ पर नहीं चलते फिर भी गुरु को तुम्हारे लिए सब कुछ करना होगा या वह सब कुछ करेंगे। याद रक्खो यह मन का धोखा है जब तुम्हारी शरणागति सच्ची और पूरी होगी तब ही तुम्हारे लिए सब कुछ किया जावेगा। अज्ञान और आलस्य में पड़े २ यह मत सोचो कि गुरु ही तुम्हारे लिए शरणागति भी कर देंगे। भगवान् यह चाहते हैं कि तुम उनकी शरण लो पर वह तुम्हारे ऊपर किसी प्रकार का बन्धन नहीं करना चाहते, तुम अपने कर्म में स्वतंत्र हो; चाहे उनकी दया को अंगीकार करो चाहे हटा दो। शरणागति स्वतः प्रवृत्त और बन्धन रहित होनी चाहिए। शरणागति विवेक सहित, चैतन्य जीव की होनी चाहिए, मूढ़ और जड़ की भान्ति नहीं होनी चाहिए। दैवी शक्ति के कर्म करने के लिये ऐसी अधीनता होनी चाहिए जिसमें प्रसन्नता हो, बल हो, और जो अधीनता में सहायक हो।

जो ऐसी सद् वृत्ति बनाए रख सकते हैं और अपनी धारणा में दृढ़ रह सकते हैं वही श्रद्धा पूर्वक निराशाओं और कठिनाइयों में विचलित न होते हुए अग्नि परीक्षाओं से निकल कर उस महान् विजय और उस महत् दिव्यत्व को प्राप्त कर सकते हैं।

यह स्मरण रक्खो कि ऐसी तामसिक शरणागति जिसमें शरणागति की शर्तें पूरी नहीं की जाती और ईश्वर से ही सब कुछ करने को कहा जाता है, जिसमें हमें कोई कष्ट या प्रयास न करना पड़े ऐसी शरणागति केवल आत्म प्रवञ्चना है, इससे मुक्ति व पूर्णत्व नहीं होता।

इस महान् योग में केवल विश्वास और श्रद्धायुक्त शरणागति की आवश्यकता है इसके होने पर यह योग सब से सरल और सुखदाई है परन्तु गुरु में निष्ठा पूरी होनी चाहिये।

ईश्वर ते गुरु में अधिक धारे भक्ति सुजान।
बिन गुरु भक्ति प्रवीण हो लहे न आत्म ज्ञान॥

परन्तु सद्गुरु भी पूरे हों, केवल व्याख्या करने वाले नहीं।

सहजो गुरु ऐसे मिले सम दृष्टि निलोभ।
शिष को प्रेम समुद्र में करदें शोषा शोष॥

(स्वा० कृष्णानन्द)

भजन

है कोई ऐसी भांति दिखावे॥

किंकिणि शब्द चलत ध्वनि सुनकुनु ठुमुक २ गृह आवै
कछुक विलाप वदन की शोभा अरुण कोटि गति पावै।
कंचन मुकुट कंठ मुक्तावली मोरपंख छवि छावै॥
धूसर धूरि अंग २ लीने ग्वाल बाल संग लावे।
सूरदास प्रभु कहति यशोदा बड़ो भाग्य ते पावै॥

२

मनौ हौं ऐसे ही मरि जैहौं।

इह आंगन गोपाल लाल को कबहुंक कनिया लैहौं॥
कब वह मुख बहुरो देखौंगी कब वैसो सचु पैहौं॥
कब मोपे माखन मांगेगो कब रोटी धरि दैहौं॥
मिलन आस तनु प्राण रहत हैं दिन दश मारग चैहौं॥
जो न सूर कान्हा आइ है तो जाई यमुन धँसि लैहौं॥

३

भामिनि कुबिजा सों रंगराते॥

राजकुमारि नारि जो पाते तौ कबहिं न अंग समाते॥
रीझे जाई तनक चन्दन लै मधुबन मारग जाते॥
ताकी कहा बड़ाई कीजै ऐसे रूप लुभाते॥
ये अहीर वह कंस की दासी जोरी करी विधाते॥
ब्रज बनिता त्यागि सूरज प्रभु बूझी उनकी बातैं॥

४

सखी री काके मीत अहीर।

काहे को भरि २ ढारति हौं नैन राह के नीर।
आपुन पियत पियावत दुहि २ इन धेनुन के क्षीर॥
निसि वासर जो छिन नहिं बिसरत है यमुना के तीर।
मेरे हियरे दौ लागति है जारत तनु की चीर॥
सूरदास प्रभु दुखित जानि के छाँड़ि गए वे पीर॥

५

सखी री श्याम सबै इकसार।

मीठे बचन सुहाये बोलत अन्तर जार न हार॥
भ्रमर कुरंग काग अरु कोकिल कपटिन की चटसार॥
कमल नयन मधु पुरी सिधारे मिटि गयो मंगलचार॥
सुनहु सखी री दोष न काहू जो विधि लिखो लिलार॥
यह करतूति इन्हीं की नाई पूरब विविध विचार॥
उमंगि घटा नसि आवे पावस प्रेम की प्रीति अपार॥
सूरदास सरिता सर पीवत चातक करत पुकार॥

६

संदेशो देवकी सों कहियो।

हौं तो धाई तुम्हारे सुत की मया करत नित रहियो॥
यदपि देव तुम जानत उनकी तऊ मोहि कहि आवै।
प्रातहि उठत तुम्हारे कान्ह को माखन रोटी भावै॥
तेल उबटन अरु तातो जल तहिं देखि भजि आवै॥
जोई २ मांगत सोई २ देती क्रम २ करि करि न्हावै।
सूर पथिक सुनि मोहि रैन दिन बढ़यो रहत उर सोच।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन ह्वै है करत संकोच॥

७

नैन सलौने श्याम हरि कब आवहिंगे।

वे जो देखत राते राते फूलन फूले डार॥
हरि बिन फूल फरी सी लागत झरि झरि परत अंगार॥
फूल बिनन न पाउं सखी री हरि बिन कैसे फूल॥
सुनरी सखी मोहिं राम दुहाई लागत फूल, त्रिशूल॥
जबतें पनिघट जाउं सखी री वा यमुना के तीर॥
भरि २ यमुना उमड़ि चलत है इन नयनन के नीर॥
इन नैनन के नीर सखीरी सेज भई हरि नाव॥
चाहति हौं वाहि पै चढ़िके हरि जी के ढिग जात॥

लाल पियारे प्राण हमारे रहे अधर पर आई ॥
सूरदास प्रभु कुब्ज बिहारी मिलन नहीं क्यों धाई ॥

८

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।
प्रीति पतंग करी दीपक सों आपे प्राण दह्यो ॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों सम्पति हाथ गह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधव सों चलत कछू न कह्यो ॥
सूरदास प्रभु बिन दुख दूनो नैनन नीर बह्यो ॥

९

अब वर्षा को आगम आयो ।
ऐसे निठुर भये नन्द नन्दन सन्देशो न पठायो ॥
बादर घोर उठे चहुदिशितें जलधर गरजि सुनायो ॥
एकै शूल रही मेरे जिय बहुरि नहीं ब्रज छायो ॥
दादुर मोर पपीहा बोलत कोकिल शब्द सुनायो ॥
सूरदास के प्रभु सो कहियो नैनन है फर लायो ॥

१०

ऊधो ब्रज को गमन करौं ।
हमहिं बिना बिरहिन गोपिका तिनके दुखहि हरौं ॥
योग ज्ञान परबोधि सबन को ज्यों सुख पावे नारि ॥
पूरण ब्रह्म अखिल परचि करि मोहि बिसारे डारि ॥
सखा प्रवीन हमारे तुम हो तुमते नहिं महन्त ॥
सूरश्याम कारण यह पठवत है आवेंगे सन्त ॥

११

श्याम कर पत्री लिखि बनाई ।
नन्द बाबासों बिनती करी कर जोरी यशोदा माई ॥
गोप ग्वाल सबन मिलि गहि मिलि २ कण्ठ लगाई ॥
और ब्रज नर नारि जैं हैं तिनहि प्रीति जनाई ॥
गोपकिनि लिखि योग पठयो भाउ जान न जाई ॥
सूर प्रभु मन ओर यह कहि प्रेम लेत दृढाई ॥

१२

ऊधो इतनी कहियो जाई ।
हम आवेंगे दोउ भैया मैया जनि अकुलाई ॥
याको बिलग बहुत हम मान्यो जो कछि पढयो धाई ॥
वह गुण हमको कहा बसरहि बड़े किये पय प्याई ॥
और जो मिल्यो नन्द बाबा सो तो कहियो समुझाई ॥
तौ लौ दुखी होन नहि पावै घबरी धूमरि गाई ॥
यद्यपि यहां अनेक भाँति सुख तदपि रह्यो न जाई ॥
सूरदास देखौं ब्रजवासिन तबहि हियो हरषाई ॥

१३

ऊधो ब्रजहि जाहु पग लागौं ।
यह पाती राधाकर दीजौ यह मैं तुम सों मांगौं ॥
गारी देत प्रात उठि मोको सुनत रहत यह बानी ।
राजा भये जाई नन्द नन्दन मिली कूबरी रानी ॥
मोपर रिसपावत काहे को बरजि श्याम नहि राख्यो ।
लरकाई ते बान्धति यशुमति कहा जू माखन चाख्यो ॥
रजु लै सबै हजूर होति तुम सहित सुता वृषभानु ।
सूरश्याम बहुरो ब्रज जैहैं ऐसे भये अजान ॥

१४

कह्यो कान्ह सुन यशुमति मैया ।
आवहिंगे दिन चारि पांच में हम हल धर दोउ भैया ॥
मुरली बेत बिसाय देखियो शृंगी बेर सबेरो ।
लै जिनि जाई चुराई राधिका कछुक खिलौना मेरो ॥
जादिन ते तुम सों बिछुरे हैं कोउ न कहत कन्हैया ।
मोरहि नाहि कलेवर कीन्हो साँझन पय पियो धैया ॥
कहत न बनत संदेशो मो पै जननि जितो दुख पायो
अब हमसों बसुदेव देवकी कहत आपनो जायो ॥
कहिए कहा नन्द बाबा सों बहुत बिठुर मन कीन्हो ।
सूर हमहीं पहुचाई मधुपुरी बहुरो सुध न लीजो ॥

— —